श्री मन्मार्कण्डेपुराणान्तर्गता

श्री दुर्गासप्तशती

[सरला नामक शुद्ध भाषा टीका सहित]

टीकाकार—सन्तराम 'सन्त'

मूल्य : 12/-
सजिल्द : 15.00

© कापीराइट
हिन्द पुस्तक भण्डार

हिन्द पुस्तक भण्डार
रवारी बावली, दिल्ली - 110006

Bedi Offset Printers, Mouzpur, Delhi-110053

विषय सूची

विषय	पृष्ठ संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
पूजा-विधि: और सामग्री	४	५ अ० देवस्तुतिर्देवीदूतसंवादश्च	१५७
दुर्गापाठ का फल	६	६ अ० धूम्रलोचनवध:	१८४
अथ सप्तश्लोकी दुर्गा	१०	७ अ० चण्डमुण्डवध:	१९२
दुर्गा के १०८ नाम	११	८ अ० रक्तबीजवध:	२०१
अम्बिकात्यायनी तन्त्रोक्त-काम्यप्रयोग विधि:	१२	९ अ० निशुम्भवध:	२२१
कुमारी-पूजन-प्रकार	१४	१० अ० शुम्भवध:	२३४
दुर्गापाठ संकल्प:	१५	११ अ० देवीस्तुति:	२४४
दुर्गा माता से प्रार्थना	१६	१२ अ० देवीवरदानम्	२६३
दुर्गाकवचम्	१७	१३ अ० सुरथवैश्यवरप्राप्ति:	२७६
अर्गला स्तोत्रम्	३६	उत्तरन्यास:	२८४
कीलकम्	४५	ऋष्यादिन्यास:	२८५
चण्डी शाप विमोचनम्	५०	ऋग्वेदोक्त-सूक्तम्	२८८
निर्वाण-मन्त्र जप विधि:	५२	तन्त्रोक्त-देवीसूक्तम्	२८९
रात्रिसूक्तम्	५२	अथ प्राधानिकम् रहस्यम्	२९४
श्री देव्यथर्वशीर्षम्	५७	वैकृतिकं रहस्यम्	३०५
अर्थ निर्वाण विधि	६४	मूर्तिरहस्यम्	३२०
सप्तशतीन्यास:	६९	सरस्वती कवचम्	३३०
१ अ० राजा सुरथवैश्यसंवाद: मधुकैटभ वध:	७३	शतचण्डी-विधि	३३५
२ अ० महिषासुर-सैन्य-वध	१०१	काम्यप्रयोग विधि	३४२
३ अ० महिषासुरवध:	१२३	देव्यापराध-क्षमापन-स्तोत्रम्	३४५
४ अ० शक्रादिस्तुति:	१३७	दुर्गाजी की आरती १, २, ३	३४७

भूमिका

श्री भगवती जगदम्बा के स्वरूप का ध्यान, मंत्रों का जाप और चरित्रों का पाठ, साधक भक्त की भावना के अनुरूप भोग, स्वर्ग और मोक्ष सभी मनोरथों की पूर्ति करता है। किन्तु हमारे सभी धार्मिक ग्रन्थ देववाणी संस्कृत में होने के कारण साधारण पढ़े-लिखे लोग, विशेष रूप से माताएं और बहनें जो स्वयं भी भगवती स्वरूपा हैं दुर्गासप्तशती (मूल) का पाठ नहीं कर पातीं। उनकी सुविधा के लिए श्री दुर्गा सप्तशती का यह सरल और शुद्ध हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। हमारा नम्र निवेदन है कि जो लोग संस्कृत जानते हैं वे संस्कृत की मूल सप्तशती का ही पाठ करें। किन्तु जो संस्कृत नहीं जानते हैं, वे हिन्दी में पाठ करें। जगदम्बा तो साधक के हृदय से निकली हुई सभी भाषाओं को सुनती हैं।

दुर्गासप्तशती के इस संस्करण में हमने कुछ विशेषता लाने का प्रयत्न किया है। अनेक ऐसे नए स्तोत्र, मंत्र और यंत्र दिए हैं जो आपको दूसरी पुस्तकों में नहीं मिलेंगे। छपाई में शुद्धता का विशेष ध्यान रखा है। पाठ करने की विधि तथा विशेष मनोरथों की पूर्ति के लिए सम्पुट पाठ के मंत्र भी दिए हैं। यह कार्य विद्वान् तथा कर्मकाण्डी ब्राह्मण द्वारा ही सम्पन्न होना चाहिए।

जैसे माँ उस पर निर्भर बालकों के भोजन-वस्त्र आदि की चिन्ता स्वयं करती है, वैसे ही आप भी जगदम्बा के प्यारे सरल-चित्त और निश्छल-निर्भर बालक बनिये। आपके मंगल की चिन्ता वे स्वयं करेंगी। आप कुपुत्र अथवा कुपुत्री हों माँ तो तब भी कुमाँ नहीं होती। कण-कण और घट-घट में उनकी लीला के दर्शन कीजिए। यह दृढ़ निश्चय रखिए कि वे जो कुछ कर रही हैं हमारे मंगल के लिए ही कर रही हैं क्योंकि वे तो मंगलस्वरूपा ही हैं। उन आद्या शक्ति से मांगना हो तो भक्ति योग और ज्ञान मांगिए। छोटी-छोटी चीजें नहीं मांगे तो अच्छा है। मांगेंगे तो वे चीजें भी मिलेंगी।

जगज्जननी जगदम्बा अपने सभी पुत्रों का कल्याण करें और सभी को अपनी भक्ति प्रदान करें, यही प्रार्थना है।

दुर्गा-पूजा तथा पाठ-विधि और सामग्री

श्री दुर्गा पूजा विशेष रूप से वर्ष भर में दो बार नवरात्रों में की जाती है। आश्विन शुक्ला प्रतिपदा को जो नवरात्र प्रारम्भ होते है, उन्हें शारदीय नवरात्र कहते हैं। चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से प्रारम्भ होनेवाले नवरात्र वार्षिक नवरात्र कहलाते हैं।

माँ दुर्गा के साधक भक्त को स्नानादि से शुद्ध होकर, शुद्ध वस्त्र पहनकर मण्डप में श्री दुर्गा की मूर्ति स्थापित करनी चाहिए। मूर्ति के दाहिनी ओर कलश की स्थापना करनी चाहिए। कलश के ठीक सामने जौ बोने चाहिए। मण्डप के पूर्व कोण में दीपक की स्थापना करे। गणपति की पूजा से आरम्भ करे। सभी देवी-देवताओं की पूजा के बाद श्री जगदम्बा की पूजा करे।

सबसे पहले कवच का पाठ करे। फिर अर्गला और कीलक का। इसके बाद रात्रि सूक्त और देवी सूक्त का पाठ करे। इनका पाठ कर लेने पर सप्तशती का पाठ प्रारम्भ करे, जो पहले अध्याय से प्रारम्भ होता है। यदि प्रति दिन १३ अध्यायों का पाठ न कर सकता हो तो तेरह अध्यायों में भगवती जगदम्बा के जो तीन चरित्र दिए हुए हैं, उनमें से किसी एक चरित्र का पूरा पाठ करे। जगदम्बा का प्रथम चरित्र पहले अध्याय में पूरा हो जाता है। दूसरा चरित्र जिसे मध्यम चरित्र भी कहते हैं दूसरे, तीसरे और चौथे अध्याय में पूरा हो हाता है। इन तीनों अध्यायों का पाठ एक साथ ही होना चाहिए। तीसरा उत्तम चरित्र अध्याय ५ से लेकर १३ तक है। इसका पाठ भी एक साथ ही होना चाहिए। प्रत्येक चरित्र का पाठ प्रारम्भ करने से पहले कवच, अर्गला और कीलक तथा रात्रि-सूक्त और देवी-सूक्त का पाठ अवश्य कर लेना चाहिए। पाठ न तो बहुत जल्दी जल्दी करना चाहिए और न बहुत धीरे। पाठ करते समय एक ही आसान से निश्चल बैठना चाहिए।

सामग्री : जल, गंगाजल, पंचामृत (दूध, दही, घी, शहद, शर्करा) रेशमी वस्त्र, उपवस्त्र, नारियल, रोली, चन्दन, अक्षत, पुष्प, पुष्पमाला, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, सुपारी, पान, लौंग, इलायची, दक्षिणा, आरती।

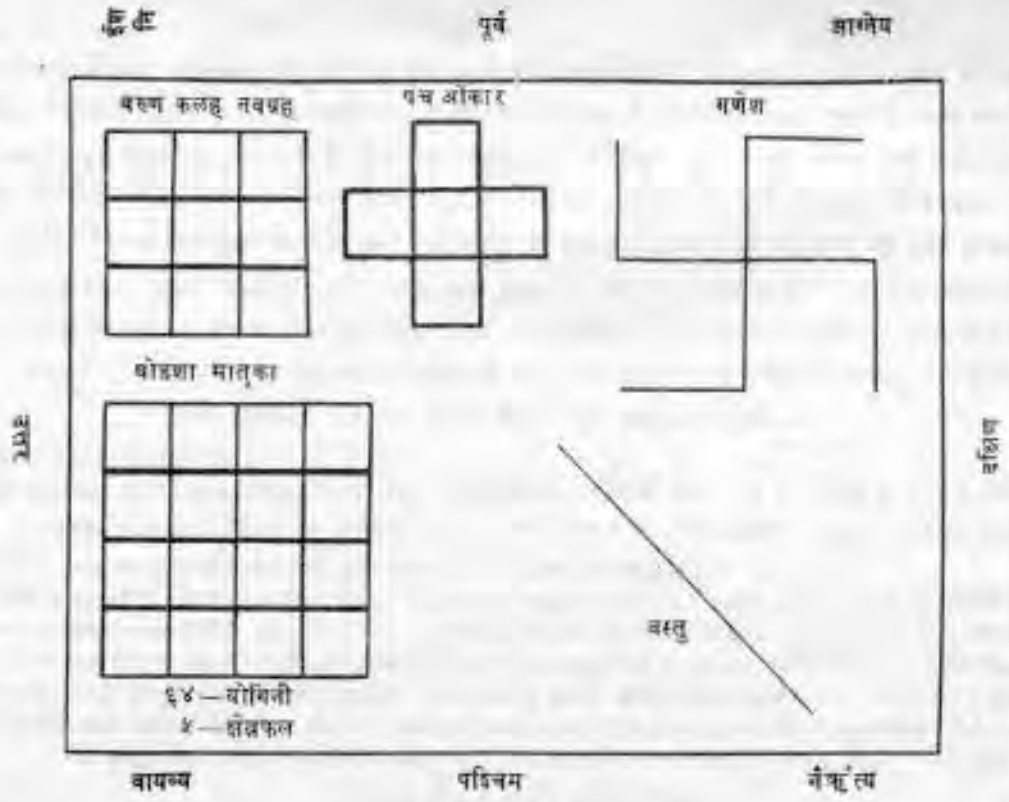

श्री दुर्गा पाठ का फल

पाठ करते समय, शरीर, वस्त्र और आसन शुद्ध होना चाहिए। आसन ऊन का हो तो श्रेष्ठ। इसके साथ ही हृदय भी शुद्ध और श्रद्धा से पूर्ण होना चाहिए। मन में किसी के भी प्रति बुरी भावना नहीं होनी चाहिए। दूसरों की निन्दा, झूठ, कड़वी वाणी बोलने से बचना चाहिए। खान-पान में नियम, शुद्धता और सात्विकता का ध्यान रखें। बासी, भारी, जूठा और दूसरे के घर का भोजन नहीं करना चाहिए। नवरात्र के पाठ में नौ दिन ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करना चाहिए। नास्तिकों तथा ब्राह्मण और गाय से द्वेष रखने वालों का संग नहीं करना चाहिए। दिन में सोना तथा चारपाई पर सोना भी निषिद्ध है। क्रोध, लोभ और मोह से भी बचना चाहिए। जगदम्बा भगवती की मूर्ति, चित्र या पुस्तक का विधि-पूर्वक पूजन करना चाहिए और इन्हें कुछ ऊंचे स्थान पर स्थापित करना चाहिए।

किसी कामना की पूर्ति के लिए पाठ करना हो तो विधि-विधान का पालन करना ही चाहिए। निष्काम पाठ के लिए विधि-विधान की उतनी आवश्यकता नहीं होती। मोटे रूप से इस बात का ध्यान रखें कि कुछ भी न करने से कुछ न कुछ करना सदा ही अच्छा होता है।

किस अध्याय का पाठ किस कार्य की सिद्धि के लिए करें

प्रथम अध्याय : चिन्ता दूर करने, दुष्ट तथा शक्तिशाली शत्रु से भय होने पर, शत्रु को मोहित और नष्ट करने के लिए। **दूसरा अध्याय :** जब बलवान् शत्रु भूमि या घर पर अधिकार कर ले। **तीसरा अध्याय :** झगड़े में विजय प्राप्त करने के लिए। **चौथा अध्याय :** धन, ऋद्धि-सिद्ध, मनोरम पत्नी की प्राप्ति के लिए। **पांचवां अध्याय :** भूत-प्रेत बाधा, दुःस्वप्न फल, नाश, भय आदि की निवृत्ति के लिए। **छठा अध्याय :** सब कामनाओं की सिद्धि के लिए। **सातवां अध्याय :** मनोकामना की पूर्ति के लिए। **आठवां अध्याय :** सैनिक की सुरक्षा के लिए। **नवां अध्याय :** लाभ तथा सम्पत्ति प्राप्ति के लिए। **दसवां अध्याय :** शक्ति, सन्तान प्राप्ति तथा सन्तान सुख के लिए। **ग्यारहवां अध्याय :** इष्टलाभ, मुक्ति-मुक्ति तथा भविष्य की चिन्ता को दूर करने के लिए। **बारहवां अध्याय :** रोग नाश के लिए, निर्भयता के लिए। **तेरहवां अध्याय :** मनचाही वस्तु की प्राप्ति के लिए। यात्रा प्रारंभ करने से पहले दुर्गाकवच का पाठ करें।

साधक आसन

नोट—शुद्धा शुद्धि, वाम भाग में ओं मं महिषाय नमः बनाना।
दक्ष भाग में ओं सिं सिंहाय नमः बनाना।

अथ सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच—देवि त्वं भक्तसुलभे सर्वकार्यविधायिनी।
कलौ हि कार्ये सिद्धयर्थमुपायं ब्रूहि यत्नतः॥
देव्युवाच— शृणु देव प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्ट साधनम्।
मया तवैव स्नेहेनाप्यम्बास्तुतिः प्रकाश्यते॥

ओ३म् अस्य श्री दुर्गासप्तश्लोकी स्तोत्र मंत्रस्य नारायण ऋषिः, अनुष्टुप छन्दः श्री महाकाली महालक्ष्मी महा सरस्वत्यो देवता दुर्गाप्रीत्यर्थं सप्तश्लोकी दुर्गा पाठे विनियोगः।

ओ३म् ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥१॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेष जन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्य दुःख भयहारिणी का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्र चित्ता॥२॥
सर्व मंगल मंगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते॥३॥
शरणागत दीनार्तपरित्राण परायणे।
सर्वस्यार्ति हरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥४॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्ति समन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते॥५॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥६॥
सर्वबाधा प्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद् वैरी विनाशनम्॥७॥

॥ इति श्री सप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्ण॥

श्री दुर्गा के १०८ नाम

(१) सती, (२) साध्वी, (३) भवप्रीता, (४) भवानी, (५) भव-मोचनी। (६) आर्या (७) दुर्गा, (८) जया, (९) आद्या, (१०) त्रिनेत्रा, (११) शूलधारिणी, (१२) पिनाकधारिणी, (१३) चित्रा, (१४) चण्डघण्टा (१५) महातपा। (१६) मन (१७) बुद्धि (१८) अहंकारा (१९) चित्तरूपा (२०) चिता (२१) चिति॥ (२२) सर्वमंत्रमयी (२३) सत्ता (२४) सत्यानन्द-स्वरूपिणी (२५) अनन्ता (२६) भाविनी (२७) भाव्या (२८) भव्या (२९) अभव्या (३०) सदागति॥ (३१) शाम्भवी (३२) देवमाता (३३) चिन्ता (३४) रत्नप्रिया सदा (३५) सर्वविद्या (३६) दक्षकन्या (३७) दक्षयज्ञविनाशिनी (३८) अपर्णा (३९) अनेकवर्णा (४०) पाटला, (४१) पाटलावती। (४२) पट्टाम्बर-परीधाना (४३) कलमंजीररंजिनी॥ (४४) अमेय-विक्रमा (४५) क्रूरा, (४६) सुन्दरी (४७) सुरसुन्दरी। (४८) वनदुर्गा (४९) मातंगी (५०) मतंगमुनिपूजिता॥ (५१) ब्राह्मी, (५२) माहेश्वरी (५३) ऐन्द्री (५४) कौमारी (५५) वैष्णवी (५६) चामुण्डा (५७) वाराही (५८) लक्ष्मी (५९) पुरुषाकृति। (६०) विमला (६१) उत्कर्षिणी (६२) ज्ञाना (६३) क्रिया (६४) नित्या (६५) बुद्धिदा॥ (६६) बहुला (६७) बहुल-प्रेमा (६८) सर्ववाहन-वाहना (६९) निशुम्भशुम्भ-हननी (७०) महिषासुरमर्दिनी। (७१) मधुकैटभहन्त्री (७२) चण्डमुण्ड-विनाशिनी (७३) सर्वासुर-विनाशा (७४) सर्वदानव घातिनी। (७५) सर्वशास्त्रमयी, (७६) सत्या (७७) सर्वास्त्रधारिणी (७८) अनेकशस्त्रहस्ता (७९) अनेकास्त्रधारिणी। (८०) कुमारी (८१) एक कन्या (८२) कैशोरी (८३) युवती (८४) यति। (८५) अप्रौढा (८६) प्रौढा (८७) वृद्ध माता (८८) बलप्रदा (८९) महोदरी। (९०) मुक्तकेशी (९१) घोररूपा (९२) महाबला (९३) अग्निज्वाला। (९४) रौद्रमुखी (९५) कालरात्रि (९६) तपस्विनी (९७) नारायणी (९८) भद्रकाली (९९) विष्णुमाया (१००) जलोदरी (१०१) शिवदूती (१०२) कराली (१०३) अनन्ता (१०४) परमेश्वरी (१०५) कात्यायनी (१०६) सावित्री (१०७) प्रत्यक्षा (१०८) ब्रह्मावादिनी।

आदिकात्यायनीतंत्रोक्त काम्यप्रयोगविधि भाषा

१—प्रत्येक श्लोक के आदि अन्त में "ओं" कहते हुए पाठ करने से मन्त्र सिद्धि।

२—प्रत्येक मन्त्र के आदि में 'ॐ भूर्भुवः स्वः' कहे और मन्त्र के अन्त में 'स्वः भुवः स्वः भुवः ॐ' कह सप्तशती का १०० पाठ करने से अति शीघ्र सिद्धि।

३—"ओं जातवेदसे" ऋचा का प्रत्येक मन्त्र के आदि में पाठ करने से सर्वकार्य सिद्धि।

४—"ॐ त्र्यम्बकंयजामहे' इस मन्त्र का जप करने से अपमृत्यु से रक्षा होती है।

५—'शूलेन पाहि नो देवी' इस मन्त्र से सम्पुट करने से अपमृत्यु नाश होती है। केवल इस मन्त्र का लक्षायुत सहस्रशत जप करने से भी अपमृत्यु शमन होती है।

६—"शरणागत" इस मन्त्र से प्रत्येक मन्त्र पर सम्पुट करने से सर्व कार्य सिद्धि।

७—"करोतुसा नः" इस आधे मन्त्र से सब मन्त्रों का सम्पुट करने से सर्वकार्य सिद्धि।

८—"एवं देव्या वरं लब्ध्वा' इस मन्त्र से सब मन्त्रों का सम्पुट करने से अभीष्ट वर प्राप्ति होती है।

९—'दुर्गे स्मृता०' इस मन्त्र से प्रत्येक मन्त्र सम्पुट करने से सर्वकार्य सिद्धि।

१०—'सर्वाबाधा०' इस मन्त्र से प्रत्येक मन्त्रों के सम्पुट से व केवल इसी मन्त्र का लाख जप करने से श्लोकोक्त फल प्राप्त होता है।

११—'इत्थं यथा यदा बाधा' इस मन्त्र से प्रत्येक मन्त्र सम्पुट करने से महामारी आदि रोगों की शांति होती है।

१२—'ततो वध्वे नृपो राज्यं' इन दोनों मन्त्रों का एक लक्ष जप करने से पुनः स्वराज्य प्राप्ति होती है।

१३—'हिनस्तिदैत्यतेजांसि' इस मंत्र के ही सहित बलिदान करने से और घंटा बंधन करने से बाल ग्रह शान्ति होती है।

१४—'प्रथमावृत्ति अनुलोम से द्वितियावृत्ति विपरीत से तृतीयवृत्ति पुनः अनुलोम पाठ करने से शीघ्र कार्यसिद्धि होती है।

१५—'दुर्गे स्मृता०' यह आधा मंत्र पढ़कर फिर 'यदन्तिके यच्चदूरके०' इस मंत्र का फिर "दारिद्र्य दुःख' इस आधे मंत्र का लक्ष अयुत (१०००००) सहस्र (१०००) शत (१००) जप करने से सर्वापत्ति दूर होती हैं।

१६—'कांसोस्मि' इस ऋग्वेदस्थ श्री सूक्त की ऋचा से सम्पुट करने से लक्ष्मी प्राप्त होती है।

१७—प्रत्येक मंत्र को 'अनृणा अस्मिन्' इस ऋचा से सम्पुट करने से ऋण का नाश होता है।

१८—एवमुक्त्वा समुत्पत्य' इस मंत्र से प्रत्येक मंत्र का सम्पुट करने से मारण प्रयोग सिद्ध होता है।

१९—'ज्ञानिनामपि चेतांसि' इस श्लोक के जप मात्र से तो अवश्य ही शीघ्र मोचन होता है।

२०—'रोगानशेषान' इस मंत्र के सम्पुट के पाठ से सकल रोग की शान्ति होती है।

२१—'इत्युक्ता सा तदा देवी' इस मंत्र के सम्पुट या पृथक् जप करने से विद्या-प्राप्ति होती है और वाणी विकार नाश हो जाता है।

२२—'भगवत्या कृतं सर्वं' एक सौ बारह अक्षर का मंत्र सम्पूर्ण आपत्ति दूर करने वाला और सब मनोरथों को पूर्ण करने वाला है।

२३—'देवी प्रपन्नार्तिहरे०' इससे प्रत्येक मंत्र का सम्पुट करने से लक्षायुत सहस्रशत कर्मानुसार जप करने से सब कार्य सिद्ध होते हैं। इस प्रयोग से दीप के आगे केवल नमस्कार से अति शीघ्र सिद्धि होती है। कामबीज से सम्पुटित करके प्रतिदिन तीन आवृत्ति करें, ४१ दिन तक पर्यन्त करें तो सर्वकामनायें सिद्ध होती हैं।

२४—उक्त रीति से २१ दिन बारह-बारह आवृत्ति पाठ करने से वशीकरण होता है।

२५—माया बीज से सम्पुटित करने से फल पल्लव के सहित ७ दिन तेरह-तेरह आवृत्ति करने से उच्चाटन सिद्ध होता है।

२६—उसी के ४ दिन ग्यारह-ग्यारह आवृत्ति करने से सब उपद्रवों का शमन होता है।

२७—श्री बीज से सम्पुटित करके पन्द्रह-पन्द्रह आवृत्ति ४९ दिन करने से लक्ष्मी प्राप्ति होती है।

२८—प्रत्येक लोक वाग्बीज से सम्पुटित करके १०० आवृत्ति करने से विद्या की प्राप्ति होती है। इनके अतिरिक्त सम्पुट करने के अनेकों मन्त्र हैं। गुरुजी से जानना चाहिये।

कुमारी-पूजन-प्रकार

श्री दुर्गा के भक्त को देवीजी की अतिशय प्रसन्नता के लिए नवरात्रि में अष्टमी अथवा नवमी को कुमारी कन्याओं को अवश्य खिलाना चाहिए। इन कुमारियों की संख्या ९ हो तो अत्युत्तम, शक्ति न होने पर दो ही सही। किन्तु भोजन करने वाली कुमारी कन्याएं २ वर्ष से कम तथा १० वर्ष से ऊपर नहीं होनी चाहिए।

क्रमशः इन सब कुमारियों के नमस्कार मन्त्र ये हैं (१) कुमार्त्यै नम (२) त्रिमर्त्यै नमः (३) कल्याण्यै नमः (४) रोहिण्यै नमः (५) कालिकायै नमः (६) चण्डिकायै नमः (७) शाम्भव्यै नमः (८) दुर्गायैनमः (९) सुभद्रायै नमः।

कुमारियों में हीनांगी, अधिकांगी, कुरूपा न होनी चाहिए। पूजन करने के बाद जब कुमारी देवी भोजन करलें तो उनसे अपने सिर पर अक्षत छुड़वाय और उन्हें दक्षिणा दें। इस तरह करने पर महामाया भगवती अत्यन्त प्रसन्न होकर मनोरथ पूर्ण कर देती हैं।

॥ अथ दुर्गापाठ-संकल्पः ॥

ओं विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः। श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्री ब्रह्मणो द्वितीय परार्द्धे विष्णुपदे श्री श्वेत वाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भूर्लोके भारतवर्षे आर्यावर्तैकदेशे यमुनायाः पश्चिमे तीरे (यह केवल दिल्ली के लिए दूसरे स्थानों में वहाँ का नाम 'विन्ध्यक्षेत्रे' इत्यादि यहां जोड़ देना चाहिये) अमुक संवत्सरे, अमुकायने, अमुकमासे, अमुकपक्षे, अमुकतिथौ, अमुकनक्षत्रे, अमुकवासरे श्रीमहाशक्ति दुर्गाप्रीत्यर्थं स्वमनोवांछितफलप्राप्तये अमुक गोत्रः अमुक शर्मा (यदि क्षत्रिय वैश्य हो तो क्रमशः वर्मा गुप्तः कायस्थ आदि हो तो अमुक कायस्थ आदि) कवचार्गलाकीलकशापोद्धारनवार्णजपन्यास-रात्रिसूक्तत्रि चरित्रप्रथमन्यासपूर्वकं द्वितीयचरित्र न्यासदेवीसूक्तनवार्णाष्टोत्तरशतत्रयरहस्यत्रयोत्तरकं दुर्गासप्तशत्याः पाठमेकम् (यदि सम्पुट पाठ हो तो 'अनेन सम्पुटितम्, यहाँ यह कहे) करिष्ये तदंगत्वेन देवपूजनं च उपस्थितसम्भारैः करिष्ये।

संकल्प करके हाथ का जल जमीन पर छोड़ दे। आगे क्रमशः जल, रोली, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, सुपारी और दक्षिणा दुर्गाजी को अर्पण करें। इन सभी पदार्थों के अर्पण का मन्त्र यह है "नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्।

श्री दुर्गा माता से प्रार्थना

सर्वमंगल मांगल्ये, शिवे सर्वार्थ साधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते॥
ब्रह्मरूपे सदानन्दे परमानन्द स्वरूपिणि।
द्रुत सिद्धिप्रदे देवि, नारायणि नमोऽस्तुते॥
शरणागतदीनार्त परित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तुते॥

करुणामयि! जगजननी, आनंद व स्नेहमयी माँ! आपकी सदा जय हो। हे अम्ब! पंखहीन पक्षी और भूख से पीड़ित बच्चे जिस प्रकार अपनी माँ की राह देखते हैं उसी प्रकार मैं आपकी दया की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। हे अमृतमयी माँ! आप शीघ्र ही आकर मुझे दर्शन दें। मैं आपका रहस्य जान सकूं ऐसी बुद्धि मुझे प्रदान करें।

॥ अथ देव्याः कवचम् ॥

ॐ अस्य श्रीचण्डीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, चामुण्डा देवता, अङ्गन्यासोक्तमातरो बीजम्, दिग्बन्धदेवतास्तत्त्वम्, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थे सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः।

ॐ नमश्चण्डिकायै॥ मार्कण्डेय उवाच

ॐ यद्गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम्।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह॥१॥

महर्षि मार्कण्डेय ने ब्रह्माजी से पूछा–हे पितामह, इस जगत् में परम गोपनीय तथा सब प्रकार से मनुष्यों की रक्षा करने वाला और जो अब तक आपने दूसरे किसी से प्रकट नहीं किया हो, ऐसा कोई उपाय मुझे बताइये॥१॥

ब्रह्मोवाच

अस्ति गुह्यतमं विप्र सर्वभूतोपकारकम्।
देव्यास्तु कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने ॥२॥
प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥३॥
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ॥४॥
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः।
उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥५॥

ब्रह्माजी बोले—हे विप्र ! ऐसा उपाय तो एक देवी का कवच ही है जो सबसे गोपनीय, पवित्र तथा सम्पूर्ण प्राणियों का उपकार करने वाला है। हे महामुने ! उसे सुनिये ॥२॥ (ध्यान के लिए दुर्गा की नौ मूर्तियाँ हैं,

जिन्हें 'नवदुर्गा' कहते हैं। उनके अलग-अलग नाम इस प्रकार हैं) पहला शैलपुत्री, दूसरा ब्रह्मचारिणी, तीसरा चन्द्रघण्टा, चौथा कूष्माण्डा, पाँचवाँ स्कन्द-माता और छठा नाम कात्यायनी है। सातवाँ कालरात्रि और आठवाँ महागौरी के नाम से प्रसिद्ध है। नवमी सिद्धिदात्री है। श्री दुर्गा के ये नौ प्रसिद्ध नाम हैं। ये सब नाम ब्रह्माजी द्वारा ही कहे हुए हैं ॥३-५॥

अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे।
विषमे दुर्गमे चैव भयार्ताः शरणं गताः ॥६॥
न तेषां जायते किंचिदशुभं रणसंकटे।
नापदं तस्य पश्यामि शोकदुःखभयं न हि ॥७॥

इस कवच के पाठ से जो मनुष्य अग्नि से जल रहा हो, रणभूमि में शत्रुओं से घिर गया हो या भयंकर संकट में फंस गया हो, तथा इस प्रकार भय से व्याकुल होकर जो माँ भगवती दुर्गा की शरण में आये हों, उनका कभी कोई अशुभ नहीं होता। युद्ध का संकट आ पड़ने पर भी उसके ऊपर कोई आपत्ति दिखाई नहीं देती। उसे कभी शोक, दुःख और भय नहीं होते ॥६-७॥

यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते।
ये त्वां स्मरान्ते देवेशि रक्षसे तान्न संशयः ॥८॥
प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना।
ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ॥९॥
माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना।
लक्ष्मीः पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया ॥१०॥
श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना।
ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरणभूषिता ॥११॥

जिन्होंने भक्तिपूर्वक देवी को याद किया है, उनकी अवश्य ही उन्नति होती है। हे देवेश्वरि! जो तुम्हारा स्मरण करते हैं, उनकी तुम रक्षा करती हो, इसमें रत्ती भर भी संशय नहीं है ॥८॥ देवियों के स्वरूप का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं—चामुण्डा देवी प्रेत पर चढ़ी हैं। वाराही भैंसे पर बैठी हैं।

ऐन्द्री हाथी पर सवार हैं। वैष्णवी देवी गरुड़ पर आसीन हैं ॥९॥ माहेश्वरी वृषभ पर आरूढ़ हैं। कौमारी मोर पर बैठी हैं। लक्ष्मी देवी कमल के आसन पर स्थित हैं और हाथों में कमल लिये हुए हैं। वृषभ पर बैठी ईश्वरी देवी ने श्वेत रूप धारण कर रक्खा है। ब्राह्मी देवी हंस पर बैठी हुई हैं और सब प्रकार के आभूषणों से सजी हुई हैं ॥१०-११॥

इत्येता मातरः सर्वाः सर्वयोगसमन्विताः।
नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोभिताः ॥१२॥

इस प्रकार ये सभी माताएँ सब प्रकार के योगों से युक्त, आभूषणों से सुसज्जित तथा अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित हैं ॥१२॥

दृश्यन्ते रथमारूढा देव्याः क्रोधसमाकुलाः।
शङ्खं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम् ॥१३॥
खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च।
कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम् ॥१४॥

दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च।
धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै ॥१५॥

क्रोध में भरी हुई ये सब देवियाँ रथ पर बैठी दिखाई देती हैं। ये देवियाँ शंख, चक्र, गदा, शक्ति, हल, मूसल, खेटक, तोमर, परशु तथा पाश; कुन्त और त्रिशूल तथा उत्तम शारंग धनुष आदि अस्त्र-शस्त्र अपने हाथों में धारण किये हुए हैं। उनके शस्त्र धारण का उद्देश्य है दैत्यों के शरीर का नाश करना, भक्तों को अभय दान देना और देवताओं का कल्याण करना ॥१३-१५॥

नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोरपराक्रमे।
महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनि ॥१६॥

महारौद्र रूप, अत्यन्त घोर पराक्रम, महान् बल और बढ़े हुए उत्साह वाली हे देवि ! तुम महान् भय का नाश करने वाली हो, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ॥१६॥

त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्द्धिनि।

प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता ॥१७॥
दक्षिणेऽवतु वाराही नैर्ऋत्यां खड्गधारिणी।
प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद् वायव्यां मृगवाहिनी ॥१८॥

तुम्हारी ओर देखना भी कठिन है। शत्रुओं को भयभीत करने वाली दुर्गे ! मेरी रक्षा करो। [दिशाओं में रक्षा] पूर्व दिशा में ऐन्द्री नाम वाली इन्द्र-शक्ति मेरी रक्षा करे। अग्निकोण में अग्निशक्ति, दक्षिण दिशा में वाराही तथा नैर्ऋत्य कोण में खड्गधारिणी देवी मेरी रक्षा करे। पश्चिम दिशा में शक्ति और वायव्य कोण में मृग पर सवारी करने वाली देवी मेरी रक्षा करे ॥१७-१८॥

उदीच्यां पातु कौमारी ऐशान्यां शूलधारिणी।
ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ॥१९॥
एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना।
जया मे चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः ॥२०॥

अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता।
शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥२१॥

उत्तर दिशा में कौमारी और ईशान कोण में त्रिशूल धारण करने वाली शूलधारिणी देवी मेरी रक्षा करे। ब्रह्माणी ऊपर की ओर से और वैष्णवी देवी नीचे की ओर मेरी रक्षा करे ॥१९॥ इसी प्रकार शव को अपनी सवारी बनाने वाली चामुण्डा देवी दशों दिशाओं में रक्षा करे। [शरीर की रक्षा] जया देवी मेरे आगे से और विजया पीछे की ओर से रक्षा करे ॥२०॥ मेरी बाईं ओर की अजिता और दाहिनी ओर की अपराजिता रक्षा करे। उद्योतिनी मेरी शिखा की रक्षा करे और उमा शिर की रक्षा करे ॥२१॥

मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी।
त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके ॥२२॥

माथे की रक्षा मालाधरी करे और यशस्विनी देवी मेरी भौंहों की रक्षा करे। भौंहों के बीच में त्रिनेत्रा और नासिका की यमघण्टादेवी रक्षा करे ॥२२॥

शङ्खिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी।
कपोलौ कालिका रक्षेत्कर्णमूले तु शांकरी ॥२३॥

दोनों नेत्रों की शंखिनी और कानों की द्वारवासिनी रक्षा करे। कालिका देवी गालों की तथा भगवती शांकरी कानों के मूल की रक्षा करे ॥२३॥

नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका।
अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती ॥२४॥

नासिका की सुगन्धा और ऊपर के होंठ की चर्चिका देवी रक्षा करे। नीचे के होंठ की अमृतकला तथा जीभ की सरस्वती रक्षा करे ॥२४॥

दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका।
घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥२५॥
कामाक्षी चिबुकं रक्षेद् वाचं मे सर्वमङ्गला।
ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्धरी ॥२६॥

नीलग्रीवा बहिःकण्ठे नलिकां नलकूबरी।
स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी ॥२७॥
हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चाङ्गुलीषु च।
नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत्कुक्षौ रक्षेत्कुलेश्वरी ॥२८॥
स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनः शोकविनाशिनी।
हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी ॥२९॥

कौमारी दाँतों की और चंडिका कण्ठ-स्थान की रक्षा करे। चित्रघण्टा गले की घुटकी की और महामाया तालू की रक्षा करे ॥२५॥ कामाक्षी ठोडी की और सर्वमंगला मेरी वाणी की रक्षा करे। भद्रकाली ग्रीवा की और धनुर्धरी मेरुदण्ड की रक्षा करे ॥२६॥ कण्ठ के बाहरी भाग की नीलग्रीवा और कण्ठ की नाली की नलकूबरी रक्षा करे। दोनों कन्धों की खड्गिनी और मेरी दोनों भुजाओं की रक्षा वज्रधारिणी करे ॥२७॥ दोनों हाथों की दण्डिनी और अंगुलियों की अम्बिका रक्षा करे। शूलेश्वरी नखों की रक्षा करे। कुलेश्वरी कोख की रक्षा

करे ॥२८॥ महादेवी दोनों स्तनों की और शोकविनाशिनी देवी मन की रक्षा करे। ललिता देवी हृदय की और शूलधारिणी पेट की रक्षा करे ॥२९॥

नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्यं गुह्येश्वरी तथा।
पूतना कामिका मेढ्रं गुदे महिषवाहिनी ॥३०॥
कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी।
जङ्घे महाबला रक्षेत्सर्वकामप्रदायिनी ॥३१॥
गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु तैजसी।
पादाङ्गुलीषु श्री रक्षेत्पादाधस्तलवासिनी ॥३२॥
नखान् दंष्ट्राकराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी।
रोमकूपेषु कौबेरी त्वचं वागीश्वरी तथा ॥३३॥
रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमेदांसि पार्वती।
अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी ॥३४॥

पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा।
ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसंधिषु ॥३५॥

नाभि की कामिनी और गुह्य भाग की गुह्येश्वरी रक्षा करे। पूतना और कामिनी लिंग और महिषवाहिनी गुदा की रक्षा करे ॥३०॥ भगवती कमर की और विंध्यवासिनी घुटनों की रक्षा करे। सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाली महाबला देवी दोनों जंघाओं की रक्षा करे ॥३१॥ नारसिंही दोनों एड़ियों की और तेजस्वी देवी दोनों पाँवों के ऊपरी भाग की रक्षा करे। श्री पैरों की अंगुलियों की और तलवासिनी पैरों के तलुओं की रक्षा करे ॥३२॥ दंष्ट्राकराली देवी नखों की और ऊर्ध्वकेशिनी देवी बालों की रक्षा करे। रोमावली की कौबेरी और त्वचा की वागीश्वरी देवी रक्षा करे ॥३३॥ पार्वती देवी रक्त, मज्जा, वसा, मांस, हड्डी और मेदे की रक्षा करे। आंतों की काल-रात्रि और पित्त की मुकटेश्वरी रक्षा करे ॥३४॥ मूलाधार आदि पद्मकोशों की पद्मावती और कफ की चूड़ामणि देवी रक्षा करे। नखों के तेज की ज्वालामुखी रक्षा करे। अभेद्या देवी समस्त शरीर में जहाँ-जहाँ जोड़ हैं, उन सब जोड़ों की रक्षा

करे ॥३५॥

शुक्रं ब्रह्माणि मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा।
अहंकारं मनो बुद्धिं रक्षेन्मे धर्मधारिणी ॥३६॥
प्राणापानौ तथा व्यानमुदानं च समानकम्।
वज्रहस्ता च मे रक्षेत्प्राणं कल्याणशोभना ॥३७॥
रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव रक्षेन्नारायणी सदा ॥३८॥

ब्राह्मी मेरे वीर्य की रक्षा करे। छत्रेश्वरी छाया की तथा धर्मधारिणी देवी मेरे अहंकार, मन और बुद्धि की रक्षा करे ॥३६॥ वज्रहस्ता देवी मेरे प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पाँचों वायुओं की रक्षा करके मुझे दीर्घायु बनाए ॥३७॥ रस, रूप, गन्ध, शब्द और स्पर्श—इन विषयों का अनुभव करते समय योगिनी देवी मेरी रक्षा करे। सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण की रक्षा सदा नारायणी देवी करे ॥३८॥

आयू रक्षतु वाराही धर्मं रक्षतु वैष्णवी।
यशः कीर्तिं च लक्ष्मी च धनं विद्यां च चक्रिणी ॥३९॥
गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके।
पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी ॥४०॥

वाराही आयु की रक्षा करे तथा वैष्णवी धर्म की रक्षा करे। लक्ष्मी देवी यश, कीर्ति, चक्रिणी धन और विद्या की रक्षा करे ॥३९॥ इन्द्राणी मेरे गोत्र की रक्षा करे। हे चण्डिके! तुम मेरे पशुओं की रक्षा करो। महालक्ष्मी मेरे पुत्रों की रक्षा करे और भैरवी मेरी पत्नी की रक्षा करे ॥४०॥

पन्थानं सुपथा रक्षेन्मार्गं क्षेमकरी तथा।
राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वतः स्थिता ॥४१॥
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु।
तत्सर्वं रक्ष मे देवि जयन्ती पापनाशिनी ॥४२॥

मेरे रास्ते की सुपथा तथा दुर्गम मार्ग की क्षेमकरी रक्षा करे। राज-दरबार में महालक्ष्मी रक्षा करे तथा सर्वत्र व्याप्त विजया देवी सब प्रकार से मेरी रक्षा करे ॥४१॥ हे देवी! जो स्थान इस कवच-पाठ में नहीं कहा गया है, अतः रक्षा से रहित है, वह सब तुम्हारे द्वारा सुरक्षित हो, क्योंकि तुम विजय-शालिनी और पापनाशिनी हो ॥४२॥

पदमेकं न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मनः।
कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति ॥४३॥
तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सार्वकामिकः।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्।
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान् ॥४४॥

यदि अपना भला चाहे तो मनुष्य बिना कवच के कहीं एक पग भी न जाय—कवच का पाठ करके ही यात्रा करे। नित्य कवच के पाठ द्वारा सब ओर से सुरक्षित मनुष्य जहाँ कहीं भी जाता है, वहीं उसे धन-लाभ होता है तथा

सारी कामनाओं की सिद्धि करने वाली विजय की प्राप्ति होती है। वह जिस-जिस अभीष्ट वस्तु की इच्छा करता है, वह वस्तु उसको निश्चय ही मिल जाती है। वह पुरुष इस पृथ्वी पर अतुलनीय परम ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ॥४३-४४॥

निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः।
त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनावृतः पुमान् ॥४५॥
इदं तु देव्याः कवचं देवानामपि दुर्लभम्।
यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसंध्यं श्रद्धयान्वितः ॥४६॥
दैवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः।
जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः ॥४७॥

इस कवच से सुरक्षित मनुष्य निर्भय हो जाता है। संग्राम में उसे कोई जीत नहीं सकता ॥४५॥ तथा वह तीनों लोकों में पूजनीय होता है। देवी का यह कवच देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। जो प्रतिदिन यत्नपूर्वक प्रातः, दोपहर

तथा सायंकाल को श्रद्धा के साथ इसका पाठ करता है, उसे दैवी सम्पत्ति प्राप्त होती है तथा वह तीनों लोकों में कहीं भी पराजित नहीं होता। वह अकाल मृत्यु रहित हो, सौ से भी अधिक वर्षों तक जीवित रहता है ॥४६-४७॥

नश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूताविस्फोटकादयः।
स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं चापि यद्विषम् ॥४८॥
अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले।
भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिकाः ॥४९॥
सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा।
अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः ॥५०॥
ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः।
ब्रह्मराक्षसवेताला: कूष्माण्डा भैरवादयः ॥५१॥
नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते।

मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्तेजोवृद्धिकरं परम् ॥५२॥

लूता और फोड़े आदि उसके सारे रोग नष्ट हो जाते हैं। स्थावर, जंगम कृत्रिम—ये सभी प्रकार के विष दूर हो जाते हैं, उनका कोई असर उस पर नहीं होता ॥४८॥ इस पृथ्वी पर मारण-मोहन आदि जितने अभिचारक प्रयोग होते हैं तथा इस प्रकार के जितने मन्त्र, यन्त्र होते हैं, वे सब इस कवच को हृदय में धारण करने वाले, मनुष्य को देखते ही नष्ट हो जाते हैं। पृथ्वी पर विचरने वाले, आकाशचारी, जल से प्रकट होने वाले, उपदेशमात्र से होने वाले भूत आदि, अपने जन्म के साथ प्रकट होने वाले देवता, कुल देवता, माला (कण्ठ-माला आदि), डाकिनी, अन्तरिक्ष में विचरने वाली अत्यन्त बलवती भयानक चुड़ैलें, ग्रह, भूत, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, ब्रह्म राक्षस, बेताल, कूष्माण्ड और भैरव आदि अनिष्ट करने वाले देवता भी हृदय में कवच धारण वाले मनुष्य को देखते ही भाग जाते हैं, कवचधारी पुरुष को राज्य से सम्मान और उन्नति की प्राप्ति होती है। यह कवच मनुष्य के तेज को बढ़ाने वाला और अति उत्तम है ॥४९-५२॥

यशसा वर्द्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले।
जपेत्सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा ॥५३॥
यावद्भूमण्डलं धत्ते सशैलवनकाननम्।
तावत्तिष्ठति मेदिन्यां संततिः पुत्रपौत्रिकी ॥५४॥

इस कवच का पाठ करने से पुरुष की यश-कीर्ति पृथ्वीतल पर सब जगह फैल जाती है। पहले इस कवच का पाठ करके उसके बाद दुर्गा सप्तशती का पाठ करना चाहिए। इस प्रकार पाठ करने वाले की जब तक वन, पर्वत और काननों सहित यह पृथ्वी टिकी है, पृथ्वी पर पुत्र-पौत्र आदि सन्तान परम्परा बनी रहेगी ॥५३-५४॥

देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम्।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामाया प्रसादतः ॥५५॥

फिर देहान्त होने पर वह पुरुष भगवती महामाया के प्रसाद से उस नित्य परमपद को प्राप्त होता है जो देवताओं के लिये भी दुर्लभ है ॥५५॥

लभते परमं रूपं शिवेन सह मोदते ॥ॐ॥५६॥

वह सुन्दर दिव्य रूप धारण करके, कल्याणमय शंकर के साथ आनन्द का उपभोग करता है ॥५६॥

इति देव्याः कवचं सम्पूर्णम् ।

अथार्गलास्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीअर्गलास्तोत्रमन्त्रस्य विष्णुर्ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहालक्ष्मीर्देवता, श्रीजगदम्बाप्रीतये सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ॥

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

मार्कण्डेय उवाच

ॐ जयन्ती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥१॥

जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणि ।
जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते ॥२॥

मार्कण्डेय जी कहते हैं—जयन्ती, मंगला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, क्षमा, शिवा, धात्री, स्वाहा और स्वधा—इन नामों से प्रसिद्ध जगदम्बिके ! तुम्हें मेरा नमस्कार हो। देवि चामुण्डे ! तुम्हारी जय हो। सम्पूर्ण प्राणियों की पीड़ा हरने वाली देवि ! तुम्हारी सदा जय हो। सब में व्याप्त रहने वाली देवि ! तुम्हारी जय हो। हे कालरात्रि ! तुम्हें नमस्कार है ॥१-२॥

मधुकैटभविद्राविविधातृवरदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥३॥

महिषासुरनिर्णाशि भक्तानां सुखदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥४॥

रक्तबीजवधे देवि चण्डमुण्डविनाशिनि ।

रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥५॥

मधु और कैटभ का हनन करने वाली तथा ब्रह्माजी को वरदान देने वाली देवि ! तुम्हें नमस्कार है। तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे शत्रुओं का नाश करो ॥३॥ महिषासुर का वध करने वाली तथा भक्तों को सुख देने वाली हे देवि ! तुम्हें नमस्कार है। तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥४॥ रक्तबीज का वध कर चण्ड-मुण्ड का नाश करने वाली हे देवि ! तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का संहार करो ॥५॥

शुम्भस्यैव निशुम्भस्य धूम्राक्षस्य च मर्दिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥६॥
वन्दिताङ्घ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥७॥
अचिन्त्यरूपचरिते सर्वशत्रुविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥८॥

नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥९॥
स्तुवद्भ्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१०॥
चण्डिके सततं ये त्वामर्चयन्तीह भक्तितः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥११॥

शुम्भ, निशुम्भ तथा धूम्राक्ष का नाश करने वाली हे देवि ! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥६॥ सबके द्वारा पूजित चरणों वाली तथा परम सौभाग्य प्रदान करने वाली हे देवि ! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥७॥ हे अचिन्त्य रूपों और चरितों वाली तथा सारे शत्रुओं का नाश करने वाली ! रूप दो, यश दो, जय दो और शत्रुओं का नाश करो ॥८॥ पापों को दूर करने वाली हे चण्डिके ! जो भक्तिपूर्वक तुम्हारे चरणों में मस्तक झुकाते हैं, उन्हें सर्वदा रूप दो, जय दो, यश दो और उनके

शत्रुओं का नाश करो ॥९॥ रोगों को नाश करने वाली चंडिके ! जो श्रद्धापूर्वक तुम्हारी स्तुति करते हैं, उन्हें रूप दो, जय दो, यश दो और उनके शत्रुओं का नाश करो ॥१०॥ चंडिके ! इस संसार में जो भक्तिपूर्वक तुम्हारी आराधना करते हैं, उन्हें रूप दो, जय दो, यश दो और उनके शत्रुओं का नाश करो ॥११॥

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१२॥
विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१३॥
विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१४॥
सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टचरणेऽम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१५॥

मुझे सौभाग्य व आरोग्य दो, परम सुख दो, रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे शत्रुओं का नाश करो ॥१२॥ जो मुझसे द्वेष रखते हों, उनका नाश और मेरे बल की वृद्धि करो। रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे शत्रुओं का नाश करो ॥१३॥ हे देवि ! मेरा कल्याण करो। मुझे उत्तम धन-सम्पत्ति दो। रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥१४॥ हे अम्बिके ! देवता और दानव दोनों ही अपने माथे के मुकुट की मणियों को तुम्हारे चरणों पर घिसते हैं अर्थात् तुम्हारे चरणों पर शीश झुकाते हैं। हे देवि ! रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥१५॥

विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१६॥
प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१७॥
चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंस्तुते परमेश्वरि ।

रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१८॥

अपने भक्तजन को विद्वान्, यशस्वी और लक्ष्मीवान् बनाओ तथा रूप दो, जय दो, यश दो और उसके शत्रुओं का नाश करो ॥१६॥ प्रचंड दैत्यों के घमंड को चूर्णित करने वाली चंडिके ! मुझ शरणागत को रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥१७॥ हे चतुरानन ब्रह्माजी के द्वारा वंदित चार भुजाओं वाली परमेश्वरि ! रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥१८॥

कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१९॥
हिमाचलसुतानाथसंस्तुते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२०॥

हे देवि अम्बिके ! भगवान् कृष्ण द्वारा नित्य-निरंतर भक्ति-पूर्वक तुम्हारी स्तुति की गई है । तुम रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का

नाश करो ॥१९॥ हिमाचल की कन्या पार्वती के पति महादेवजी द्वारा वंदित परमेश्वरि ! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥२०॥

इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२१॥
देवि प्रचण्डदोर्दण्डदैत्यदर्पविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२२॥

इन्द्र के द्वारा सद्भाव से पूजित होने वाली परमेश्वरी, तुम रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥२१॥ प्रचंड भुजदंडों वाले दैत्यों का घमंड चूर करने वाली देवि ! रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥२२॥

देवि भक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२३॥

पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम्।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम् ॥२४॥

देवि अम्बिके ! तुम निरन्तर भक्ति करने वाले भक्तजनों को आनन्द प्रदान करती हो। मुझे रूप दो, जय दो, यश दो, और मेरे शत्रुओं का नाश करो ॥२३॥ मेरे मन की इच्छा के अनुसार चलने वाली, दुर्गम संसार से तारने वाली तथा उत्तम कुल में उत्पन्न हुई मनोरमा पत्नी प्रदान करो ॥२४॥

इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः।
स तु सप्तशतीसंख्यावरमाप्नोति सम्पदाम् ॥२५॥

जो मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ करके सप्तशती का पाठ करता है, वह सप्तशती की जपसंख्या से मिलने वाले श्रेष्ठ फल को प्राप्त होता है और सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है ॥२५॥

इति देव्या अर्गलास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

अथ कीलकम्

ॐ अस्य श्रीकीलकमन्त्रस्य शिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहासरस्वती देवता, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थं सप्तशतीपाठांगत्वेन जपे विनियोगः।

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

मार्कण्डेय उवाच

ॐ विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे।
श्रेयः प्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्धधारिणे ॥१॥

मार्कण्डेय जी बोले–शुद्ध ज्ञान ही जिसका शरीर है, तथा वेद ही जिनके तीन दिव्य चक्षु हैं, जो सुखप्राप्ति के हेतु हैं तथा अपने मस्तक पर अर्धचन्द्र का मुकुट धारण करते हैं, उन भगवान् शिव को नमस्कार है ॥१॥

मन्त्रों का जो अभिकीलक है अर्थात् मन्त्रों की सिद्धि में विघ्नबाधा उपस्थित करने वाले शापरूपी कीलक का जो निवारण करने वाला है, उस स्तोत्र को सम्पूर्ण रूप से जानना व समझना चाहिए।

सर्वमेतद्विजानीयान्मन्त्राणामभिकीलकम् ।
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाप्यतत्परः ॥२॥
सिद्ध्यन्त्युच्चाटनादीनि वस्तूनि सकलान्यपि ।
एतेन स्तुवतां देवी स्तोत्रमात्रेण सिद्ध्यति ॥३॥

यद्यपि इसके अतिरिक्त अन्य मन्त्रों के जप में भी जो सतत लगा रहता है, वह भी कल्याण का भागी होता है ॥२॥ उसके भी उच्चाटन आदि कर्म सिद्ध होते हैं तथा समस्त दुर्लभ पदार्थों व वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है। तथापि जो केवल इस स्तोत्र से देवी की स्तुति करते हैं, उनकी स्तुति मात्र से देवी सिद्ध हो जाती हैं ॥३॥

न मन्त्रो नौषधं तत्र न किंचिदपि विद्यते ।
विना जाप्येन सिद्ध्येत सर्वमुच्चाटनादिकम् ॥४॥

उन्हें फिर अपनी कार्यसिद्धि के लिए मन्त्र, औषधि तथा अन्य किसी साधन की आवश्यकता नहीं रहती। बिना जप के ही उनके उच्चाटन आदि

समस्त आभिचारक कर्म सिद्ध हो जाते हैं ॥४॥

समग्राण्यपि सिद्ध्यन्ति लोकशङ्कामिमां हरः ।
कृत्वा निमन्त्रयामास सर्वमेवमिदं शुभम् ॥५॥

शिवजी ने, लोगों को सर्व सिद्धियाँ बिना परिश्रम किये प्राप्त हो जाने की शंका से इस सब शुभ को कील दिया, लोगों की इस शंका को सामने करके भगवान् ने चंडिका के इस स्तोत्र को गुप्त कर दिया है।

स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु तच्च गुप्तं चकार सः ।
समाप्तिर्न च पुण्यस्य तां यथावन्नियन्त्रणाम् ॥६॥

इसके पाठ से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। अन्य मन्त्रों का जाप करने वाला पुरुष भी यदि इस स्तोत्र के जप का अनुष्ठान कर ले तो वह भी पूर्णरूप से कल्याण का भागी होता है, इसमें नाममात्र भी सन्देह नहीं है।

सोऽपि क्षेममवाप्नोति सर्वमेवं न संशयः ।
कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः ॥७॥

ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसीदति।
इत्थंरूपेण कीलेन महादेवेन कीलितम् ॥८॥
यो निष्कीलां विधायैनां नित्यं जपति संस्फुटम्।
स सिद्धः स गणः सोऽपि गन्धर्वो जायते नरः ॥९॥

जो साधक कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी अथवा शुक्ल पक्ष की अष्टमी को एकाग्र मन से भगवती की सेवा म अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है और फिर उसे प्रसाद स्वरूप से ग्रहण करता है, उसी पर भगवती प्रसन्न होती हैं; अन्यथा नहीं। इसी प्रकार सिद्धि के प्रतिबन्धक रूप कीलक के द्वारा महादेवजी ने इस स्तोत्र को कीलित कर रखा है ॥५-८॥ जो पूर्वकथित रीति से निष्कीलन करके इस सप्तशती-स्तोत्र का प्रतिदिन स्पष्ट उच्चारण पूर्वक पाठ करता है, वह मनुष्य सिद्ध हो जाता है, वही देवी का पार्षद होता है ॥९॥ सर्वत्र विचरते रहने पर भी, इस संसार में उसे कहीं भी भय नहीं होता।

न चैवाप्यटतस्तस्य भयं क्वापीह जायते।

नापमृत्युवशं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥१०॥
ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत न कुर्वाणो विनश्यति।
ततो ज्ञात्वैव सम्पन्नमिदं प्रारभ्यते बुधैः ॥११॥

वह अपमृत्यु के वश में नहीं पड़ता तथा शरीर त्यागने के बाद मोक्ष पद प्राप्त करता है ॥१०॥ अतः कीलन को जान कर उसका परिहार करके ही सप्तशती का पाठ आरम्भ करे। जो ऐसा नहीं करता, उसका नाश हो जाता है। इसलिए कीलक और निष्कीलन का ज्ञान प्राप्त करने पर ही स्तोत्र निर्दोष होता है और विद्वान् पुरुष इस निर्दोष स्तोत्र का ही पाठ करते हैं ॥११॥ स्त्रियों में जो कुछ भी सौभाग्य आदि दृष्टिगोचर होता है, वह सब देवी के प्रसाद का ही फल है।

सौभाग्यादि च यत्किंचिद् दृश्यते ललनाजने।
तत्सर्वं तत्प्रसादेन तेन जाप्यमिदं शुभम् ॥१२॥
शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्चकैः।

भवत्येव समग्रापि ततः प्रारभ्यमेव तत् ॥१३॥
ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्यसम्पदः ।
शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः ॥ॐ॥१४॥

अतः इस कल्याणमय स्तोत्र का सदा जप करना चाहिए ॥१२॥ इस स्तोत्र का मन्द स्वर से पाठ करने पर अल्प फल की प्राप्ति होती है और उच्च स्वर से ही इसका आरम्भ करना चाहिए ॥१३॥ जिसके प्रभाव से ऐश्वर्य सौभाग्य, आरोग्य, सुख, सम्पत्ति, समृद्धि, शत्रुनाश तथा परम मोक्ष की भी सिद्धि होती है, उस कल्याणमयी जगदम्बा की स्तुति मनुष्य क्यों नहीं करें ॥१४॥

इति देव्याः कीलकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

इसके अनन्तर रात्रिसूक्त का पाठ करना उचित है । पाठ के आरम्भ में रात्रिसूक्त और अन्त में देवीसूक्त के पाठ की विधि है । मारीचकल्प का वचन है—

रात्रिसूक्तं पठेदादौ मध्ये सप्तशतीस्तवम् ।
प्रान्ते तु पठनीयं वै देवीसूक्तमिति क्रमः ॥

रात्रिसूक्त के बाद विनियोग, न्यास और ध्यानपूर्वक नवार्णमन्त्र का जप करके सप्तशती का पाठ आरम्भ करना चाहिये। पाठ के अन्त में पुनः विधिपूर्वक नवार्णमन्त्र का जप करके देवीसूक्त का तथा तीनों रहस्यों का पाठ करना उचित है । विदम्बरसंहिता में कहा गया है—'मध्ये नवार्णपुटितं कृत्वा स्तोत्रं सदाभ्यसेत् ।' अर्थात् सप्तशती का पाठ बीच में हो और आदि-अन्त में नवार्ण-जप से उसको सम्पुटित कर दिया जाय । डामरतन्त्र में यह बात अधिक स्पष्ट कर दी गयी है—

शतमादौ शतं चान्ते जपेन्मन्त्रं नवार्णकम् ।
चण्डीं सप्तशतीं मध्ये सम्पुटोऽयमुदाहृतः ॥

अर्थात् आदि और अन्त में सौ-सौ बार नवार्णमन्त्र का जप करे और मध्य में सप्तशती दुर्गा का पाठ करे, यह सम्पुट कहा गया है । अतः पहले रात्रिसूक्त, फिर नवार्ण-जप, फिर न्यासपूर्वक सप्तशती पाठ, फिर विधिवत् नवार्ण-जप, फिर क्रमशः देवीसूक्त एवं रहस्यत्रय का पाठ—यही क्रम ठीक है । रात्रिसूक्त भी दो प्रकार के हैं—वैदिक और तान्त्रिक । वैदिक रात्रिसूक्त ऋग्वेद की आठ ऋचाएँ हैं और तान्त्रिक तो दुर्गासप्तशती के प्रथमाध्याय में ही है । यहाँ दोनों दिये जाते हैं । रात्रिदेवता के प्रतिपादक

सूक्त को रात्रिसूक्त कहते हैं। यह रात्रिदेवी दो प्रकार की हैं—एक जीवरात्रि और दूसरी ईश्वररात्रि। जीवरात्रि वही है, जिसमें प्रतिदिन जगत् के साधारण जीवों का व्यवहार लुप्त होता है। दूसरी ईश्वर-रात्रि वह है, जिसमें ईश्वर के जगद्रूप व्यवहार का लोप होता है, उसी को कालरात्रि या महाप्रलयरात्रि कहते हैं। उस समय केवल ब्रह्म और उनकी मायाशक्ति, जिसे अव्यक्त प्रकृति कहते हैं, शेष रहती है। इसकी अधिष्ठात्री देवी 'भुवनेश्वरी' हैं। रात्रिसूक्त से उन्हीं का स्तवन होता है।

॥ अथ वेदोक्तं रात्रिसूक्तम्* ॥

ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः। विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥१॥

ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वतः। ज्योतिषा बाधते तमः ॥२॥ निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती। अपेदु हासते तमः ॥३॥ सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि। वृक्षे न वसतिं वयः ॥४॥

*ऋग्वेद···मं० १० अ० १० सू० १२७ मन्त्र १ से ८ तक।

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः। नि श्येना-सश्चिदर्थिनः ॥५॥

यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये। अथा नः सुतरा भव ॥६॥

उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित। उष ऋणेव यातय ॥७॥

उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः। रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥८॥

अथ तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम्

ॐ विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥१॥

ब्रह्मोवाच

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका ।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ॥२॥
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ।
त्वमेव संध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ॥३॥
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥४॥
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ।
तथा संहृतिरुपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥५॥
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ॥६॥

प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥७॥
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥८॥
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
खड्गिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥९॥
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥१०॥
यच्च किंचित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ॥११॥
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् ।

सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥१२॥
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥१३॥
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥१४॥
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥१५॥

इति रात्रिसूक्तम्।

श्रीदेव्यथर्वशीर्षम्

ॐ सर्वे वै देवा देवामुपतस्थुः कासि त्वं महादेवीति ॥१॥

साब्रवीत्—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च ॥२॥

अहमानन्दानानन्दौ। अहं विज्ञानाविज्ञाने। अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये। अहं पञ्च भूतान्यपञ्चभूतानि। अहमखिलं जगत् ॥३॥

वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याहमविद्याहम्। अजाहमनजाहम्। अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम् ॥४॥

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं मित्रावरुणावुभौ बिभर्मि। अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ ॥५॥

अहं सोमं त्वष्टारं पूषणं भगं दधामि। अहं विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापतिं दधामि ॥६॥

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय

सुन्वते। अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्। अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे। य एवं वेद। स दैवीं सम्पदमाप्नोति ॥७॥

ते देवा अब्रुवन्—नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥८॥

तामग्निवर्णा तपसा ज्वलन्तीं
वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणं प्रपद्या-
महेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः ॥९॥

देवीं वाचमजनयन्त देवा-
स्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।

सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना
धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥१०॥

कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम्।
सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ॥११॥

महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि।
तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥१२॥

अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥१३॥

कामो योनिः कमला वज्रपाणि-
र्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च
पुरूच्यैषा विश्वमातादिविद्योम् ॥१४॥

एषाऽऽत्मशक्तिः । एषा विश्वमोहिनी । पाशाङ्कुश-धनुर्बाणधरा । एषा श्रीमहाविद्या । य एवं वेद स शोकं तरति ॥१५॥

नमस्ते अस्तु भगवति मातरस्मान् पाहि सर्वतः ॥१६॥

सैषाष्टौ वसवः । सैषैकादश रुद्राः । सैषा द्वादशादित्याः । सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च । सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः । सैषा सत्त्वरजस्तमांसि । सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी । सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः । सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि । कलाकाष्ठादिकालरूपिणी । तामहं प्रणौमि नित्यम् ॥

पापापहारिणीं देवीं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ।

अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम् ॥१७॥

वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम् ।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम् ॥१८॥

एवमेकाक्षरं ब्रह्म यतयः शुद्धचेतसः ।
ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः ॥१९॥

वाङ्माया ब्रह्मसूस्तस्मात् षष्ठं वक्त्रसमन्वितम् ।
सूर्योऽवामश्रोत्रबिन्दुसंयुक्तष्टात्तृतीयकः ।
नारायणेन संमिश्रो वायुश्चाधरयुक् ततः ।
विच्चे नवार्णकोऽर्णः स्यान्महदानन्ददायकः ॥२०॥

हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमप्रभाम् ।
पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम् ।

त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे ॥२१॥
नमामि त्वां महादेवीं महाभयविनाशिनीम् ।
महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम् ॥२२॥

यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया। यस्या अन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता। यस्या लक्ष्यं नोपलक्ष्यते तस्मादुच्यते अलक्ष्या। यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अजा। एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका। एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका। अत एवोच्यते अज्ञेयानन्तालक्ष्याजैका नैकेति ॥२३॥

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।

ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी।
यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता ॥२४॥
तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम् ।
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम् ॥२५॥

इदमथर्वशीर्षं योऽधीते स पञ्चाथर्वशीर्षजपफलमाप्नोति। इदमथर्वशीर्षमज्ञात्वा योऽर्चां स्थापयति—
शतलक्षं प्रजप्त्वापि सोऽर्चासिद्धिं न विन्दति।
शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः।
दशवारं पठेद् यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते।
महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसादतः ॥२६॥

सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति।

प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति। निशीथे तुरीयसंध्यायां जप्त्वा वाक्सिद्धिर्भवति। नूतनायां प्रतिमायां जप्त्वा देवतासान्निध्यं भवति। प्राणप्रतिष्ठायां जप्त्वा प्राणानां प्रतिष्ठा भवति। भौमाश्विन्यां महादेवीसंनिधौ जप्त्वा महामृत्युं तरति। स महामृत्युं तरति य एवं वेद। इत्युपनिषत्॥

अथ नवार्णविधि

इस प्रकार रात्रिसूक्त और देव्यथर्वशीर्ष का पाठ करने के पश्चात् निम्नाङ्कितरूप से नवार्ण-मन्त्र के विनियोग, न्यास और ध्यान आदि करे।

श्रीगणपतिर्जयति। ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, गायत्र्युष्णि-

नुष्टुभश्छन्दांसि, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

इसे पढ़कर जल गिराये।

नीचे लिखे न्यासवाक्यों में से एक-एक का उच्चारण करके दाहिने हाथ की उँगलियों से क्रमशः सिर, मुख, हृदय, गुदा, दोनों चरण और नाभि—इन अङ्गों का स्पर्श करे।

ऋष्यादिन्यासः

ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः, शिरसि। गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः, मुखे। महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः, हृदि। ऐं बीजाय नमः, गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः, पादयोः। क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ।

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'—इस मूलमन्त्र से हाथों की शुद्धि करके करन्यास करे।

करन्यासः

करन्यास में हाथ की विभिन्न उँगलियों, हथेलियों और हाथ के पृष्ठभाग में मन्त्रों का न्यास (स्थापन) किया जाता है। इसी प्रकार अङ्गन्यास में हृदयादि अङ्गों में मन्त्रों की स्थापना होती है। मन्त्रों को चेतन और मूर्तिमान् मानकर उन-उन अङ्गों का नाम लेकर उन मन्त्रमय देवताओं का ही स्पर्श और वन्दन किया जाता है, ऐसा करने से पाठ या जप करनेवाला स्वयं मन्त्रमय होकर मन्त्र-देवताओं

द्वारा सर्वथा सुरक्षित हो जाता है। उसके बाहर-भीतर की शुद्धि होती है, दिव्य बल प्राप्त होता है और साधना निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण तथा परम लाभदायक होती है।

ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः (दोनों हाथों की तर्जनी अँगुलियों से दोनों अँगूठों का स्पर्श)।

ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः (दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों तर्जनी अँगुलियों का स्पर्श)।

ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः (अँगूठों से मध्यमा अँगुलियों का स्पर्श)।

ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः (अनामिका अँगुलियों का स्पर्श)।

ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः (कनिष्ठिका अंगुलियों का स्पर्श)।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः (हथेलियों और उनके पृष्ठभागों का परस्पर स्पर्श)।

हृदयादिन्यासः

इसमें दाहिने हाथ की पाँचों उँगलियों से 'हृदय' आदि अङ्गों का स्पर्श किया जाता है।

ॐ ऐं हृदयाय नमः (दाहिने हाथ की पाँचों उँगलियों से हृदय का स्पर्श)।

ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा (सिर का स्पर्श)।

ॐ क्लीं शिखायै वषट् (शिखा का स्पर्श)।

ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम् (दाहिने हाथ की उँगलियों से बायें कंधे का और बायें हाथ की उँगलियों से दाहिने कंधे का साथ ही स्पर्श)।

ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट् (दाहिने हाथ की उँगलियों के अग्रभाग से दोनों नेत्रों और ललाट के मध्यभाग का स्पर्श)।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट् (यह वाक्य पढ़कर दाहिने हाथ को सिर के ऊपर से बायीं ओर से पीछे की ओर ले जाकर दाहिनी ओर से आगे की ओर ले आये और तर्जनी तथा मध्यमा उँगलियों से बायें हाथ की हथेली पर ताली बजाये)।

अक्षरन्यासः

निम्नाङ्कित वाक्योंको पढ़कर क्रमशः शिखा आदि का दाहिने हाथ की उँगलियों से स्पर्श करे।

ॐ ऐं नमः, शिखायाम्। ॐ ह्रीं नमः, दक्षिणनेत्रे। ॐ क्लीं नमः, वामनेत्रे। ॐ चां नमः, दक्षिणकर्णे। ॐ मुं नमः, वामकर्णे। ॐ डां नमः, दक्षिणनासापुटे। ॐ यै नमः, वामनासापुटे। ॐ विं नमः, मुखे। ॐ च्चें नमः, गुह्ये।

इस प्रकार न्यास करके मूलमन्त्र से आठ बार व्यापक (दोनों हाथों द्वारा सिर से लेकर पैर तक के सब अङ्गों का स्पर्श) करे, फिर प्रत्येक दिशा में चुटकी बजाते हुए न्यास करे—

दिङ्न्यासः

ॐ ऐं प्राच्यै नमः। ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः। ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः। ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः। ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः। ॐ क्लीं वायव्यै नमः। ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः। ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः।*

*यहाँ प्रचलित परम्परा के अनुसार न्यासविधि संक्षेप से दी गयी है। जो विस्तार से करना चाहे, वे अन्यत्र से सारस्वतन्यास, मातृकान्यास, षड्देवीन्यास, ब्रह्मादिन्यास, महालक्ष्म्यादिन्यास, बीजमन्त्रन्यास, त्रिलोमबीजन्यास, मन्त्रव्याप्तिन्यास आदि अन्य प्रकार के न्यास भी कर सकते हैं।

ध्यानम्

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥१॥
अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥२॥
घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥३॥

फिर 'ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः' इस मन्त्रसे माला की पूजा करके प्रार्थना करे—

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥

ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे ।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये ॥

ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा ।

इसके बाद 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं वामुण्डायै विच्चे' इस मन्त्र का १०८ बार जप करे और—

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥

इस श्लोक को पढ़कर देवी के वाम हस्त में जप निवेदन करे ।

सप्तशतीन्यासः

तदनन्तर सप्तशती के विनियोग, न्यास और ध्यान करने चाहिये । न्यास की प्रणाली पूर्ववत् है—

प्रथममध्यमोत्तरचरित्राणां ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, नन्दाशाकम्भरीभीमाः शक्तयः, रक्तदन्तिकादुर्गाभ्रामर्यो बीजानि, अग्निवायुसूर्यास्तत्त्वानि, ऋग्यजुःसामवेदा ध्यानमत्र, सकलकामनासिद्धये श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ तर्जनीभ्यां नमः ।
ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ मध्यमाभ्यां नमः ।
ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ अनामिकाभ्यां नमः ।
ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

खड्गिनी शूलिनी घोरा०—हृदयाय नमः ।
शूलेन पाहि नो देवि०—शिरसे स्वाहा ।
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च०—शिखायै वषट् ।
सौम्यानि यानि रूपाणि०—कवचाय हुम् ।

खड्गशूलगदादीनि०—नेत्रत्रयाय वौषट् ।
सर्वस्वरूपे सर्वेशे०—अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेवितास् ।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

इसके बाद प्रथम चरित्र का विनियोग और ध्यान करके 'मार्कण्डेय उवाच' से सप्तशती का पाठ आरम्भ करे । प्रत्येक चरित्र का विनियोग मूल सप्तशती के साथ ही दिया गया है तथा प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में ध्यान भी दे दिया गया है । पाठ प्रेमपूर्वक भगवती का ध्यान करते हुए करे । मीठा स्वर, अक्षरों का स्पष्ट उच्चारण, पदों का विभाग, उत्तम स्वर, धीरता, एक लय के साथ बोलना—ये सब पाठकों के गुण हैं । जो पाठ करते समय रागपूर्वक गाता, उच्चारण में जल्दबाजी करता, सिर हिलाता, अपने हाथ से लिखी हुई पुस्तक पर पाठ करता, अर्थ की जानकारी नहीं रखता और अधूरा ही मन्त्र कण्ठस्थ करता है, वह पाठ करनेवालों में अधम माना गया है । जबतक अध्याय की पूर्ति न हो, तबतक बीच में पाठ बंद न करे । यदि प्रमादवश अध्याय के बीच में पाठ का विराम हो जाय तो पुनः प्रति बार पूरे अध्याय का पाठ करे । अज्ञानवश पुस्तक हाथ में लेकर पाठ करने पर आधा ही फल होता है । स्तोत्र

का पाठ मानसिक नहीं, वाचिक होना चाहिये। वाणी से उसका स्पष्ट उच्चारण ही उत्तम माना गया है। बहुत जोर-जोर से बोलना तथा पाठ में उतावली करना वर्जित है। यत्नपूर्वक शुद्ध एवं स्थिर चित्त से पाठ करना चाहिये। यदि पाठ कण्ठस्थ न हो तो पुस्तक से करे। अपने हाथ से लिखे हुए अथवा ब्राह्मणेतर पुरुष के लिखे हुए स्तोत्र का पाठ न करे। यदि एक सहस्र से अधिक श्लोकों या मन्त्रों का ग्रन्थ हो तो पुस्तक देखकर ही पाठ करे; इससे कम श्लोक हों तो उन्हें कण्ठस्थ करके बिना पुस्तक के भी पाठ किया जा सकता है। अध्याय समाप्त होने पर 'इति', 'वध', 'अध्याय' तथा 'समाप्त' शब्द का उच्चारण नहीं करना चाहिये।

अध्यायकी पूर्ति होनेपर यों कहना चाहिये—'श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये प्रथमः ॐ तत्सत्।' इसी प्रकार 'द्वितीयः', 'तृतीयः' आदि कहकर समाप्त करना चाहिये।

॥ श्रीदुर्गायै नमः ॥

अथ श्रीदुर्गासप्तशती

प्रथमोऽध्यायः

मेधा ऋषि का राजा सुरथ और समाधि वैश्य को देवी भगवती की महिमा बताते हुए मधु-कैटभ वध का प्रसंग सुनाना।

विनियोगः

ॐ प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, महाकाली देवता, गायत्री छन्दः, नन्दा शक्तिः, रक्तदन्तिका बीजम्, अग्निस्तत्त्वम्, ऋग्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहाकालीप्रीत्यर्थं प्रथमचरित्रजपे विनियोगः।

पहले चरित्र के ब्रह्मा ऋषि, महाकाली देवता, गायत्री छन्द, नन्दा शक्ति, रक्तदन्तिका बीज, अग्नि तत्त्व और ऋग्वेद स्वरूप है। श्रीमहाकाली देवता की प्रसन्नता के लिए पहले चरित्र के जप में विनियोग किया जाता है।

ध्यानम्

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥

भगवान् विष्णु के सो जाने पर मधु और कैटभ को मारने के लिए, कमल से पैदा होने वाले ब्रह्माजी ने जिनकी स्तुति की थी, उन महाकाली देवी की मैं सेवा करता हूँ। वे अपनी दस भुजाओं में खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्डि, मस्तक और शंख धारण किये हुए हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे अपने तमाम अंगों में आभूषण धारण किये हुए हैं। उनके शरीर की चमक नीलमणि के समान है और वे दस पैरों वाली हैं।

ॐ नमश्चण्डिकायै॥

'ॐ' ऐं मार्कण्डेय उवाच॥१॥

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम॥२॥

महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः॥३॥
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः।
सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले॥४॥

मार्कण्डेय जी बोले—सूर्य के पुत्र सावर्णि* जो आठवें मनु कहे जाते हैं, उनकी उत्पत्ति की कथा विस्तारपूर्वक कहता हूं, सो सुनो॥१-२॥ सूर्यपुत्र महाभाग सावर्णि, भगवती महामाया के अनुग्रह से जिस प्रकार मन्वन्तर के स्वामी हुए, वही प्रसंग सुनाता हूं॥३॥ पूर्वकाल की बात है, स्वारोचिष मन्वन्तर में चैत्रवंश में उत्पन्न हुआ सुरथ नाम का राजा था, जिसका समस्त भूमण्डल पर अधिकार था॥४॥

तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।

* "यह 'दुर्गा-सप्तशती' मार्कण्डेय पुराण में ७८वें अध्याय से आरम्भ होती है तथा ९०वें अध्याय में समाप्त होती है। कौष्टुकि ऋषि ने मार्कण्डेय मुनि से जगत् की उत्पत्ति तथा मनुओं के विषय में प्रश्न पूछा है। मार्कण्डेय जी सात मनुओं का वर्णन कर चुके, अब आठवें मनु का वर्णन करते हुए कौष्टुकि ऋषि से कहते हैं।

बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा ॥५॥
तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबलदण्डिनः।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥६॥
ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत्।
आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥७॥
अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः।
कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥८॥

वह प्रजा का अपने पुत्रों की भांति धर्मपूर्वक पालन करता था, फिर भी उस समय कोलाविध्वंसी नामक क्षत्रिय उसके शत्रु हो गये ॥५॥ राजा सुरथ की दण्डनीति बड़ी प्रबल थी। उसका शत्रु के साथ युद्ध हुआ। यद्यपि कोलाविध्वंसी संख्या में कम थे, तो भी राजा सुरथ युद्ध में उनसे हार गया ॥६॥ तब वह युद्ध-भूमि से अपने नगर को लौट आया और केवल अपने नगर का राजा होकर रहने लगा। किन्तु वहां भी उन प्रबल शत्रुओं ने उस पर आक्रमण कर

दिया ॥७॥ राजा की शक्ति क्षीण हो चली थी, अतः उसके दुष्ट, बलवान् तथा दुराचारी मंत्रियों ने वहां उसकी राजधानी में भी राजकीय सेना और खजाने को हथिया लिया ॥८॥

ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥९॥
स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ॥१०॥
तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥११॥

सुरथ का प्रभुत्व नष्ट हो चुका था, इसलिए वह शिकार खेलने के बहाने घोड़े पर सवार हो वहां से अकेले ही एक घने जंगल में चला गया ॥९॥ वहां उसने ब्राह्मण-श्रेष्ठ मेधामुनि का आश्रम देखा। उस आश्रम में अनेक हिंसक जीव परम शान्तभाव से रहते थे ॥१०॥ मुनि के बहुत से शिष्य भी उस

आश्रम की शोभा बढ़ा रहे थे। वहां जाने पर मुनि ने राजा का आदर-सत्कार किया और वह उन मुनिश्रेष्ठ के आश्रम में इधर-उधर विचरते हुए कुछ काल तक वहां रहा ॥११॥ फिर ममता के वश होकर वह उस आश्रम में इस प्रकार चिन्ता करने लगा—पूर्वकाल में मेरे पूर्वजों ने जिस नगर का पालन किया था, वही नगर आज मेरे अधिकार में नहीं है। पता नहीं, दुराचारी कर्मचारी उसकी धर्मपूर्वक रक्षा करते हैं या नहीं !

सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः ।
मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत् ॥१२॥
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा ।
न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः ॥१३॥
मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते ।
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः ॥१४॥

अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ।
असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ॥१५॥
संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति ।
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः ॥१६॥
तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः ।
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ॥१७॥
सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे ।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् ॥१८॥
प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥१९॥

जो सदा मद की वर्षा करता और अति बलवान् था, वह मेरा प्रधान हाथी अब शत्रुओं के अधीन होकर न जाने कैसा होगा ? जो लोग मेरी कृपा, धन और भोजन पाने से सदा मेरे पीछे चलते थे, वे निश्चय ही अब दूसरे

राजाओं का अनुसरण करते होंगे !

व्यर्थ खर्च करने वाले उन लोगों के द्वारा अत्यन्त कष्ट से जमा किया हुआ वह मेरा खजाना खाली हो जाएगा। ये तथा और भी कई बातें राजा सुरथ लगातार सोचता था। एक दिन उसने वहां विप्रवर मेधा के आश्रम के निकट एक वैश्य को देखा और उससे पूछा—तुम कौन हो ? और यहां किस-लिए आए हो ? तुम शोकग्रस्त और उद्विग्न दिखाई देते हो ? राजा सुरथ का यह प्रेम पूर्वक कहा वचन सुन कर वैश्य ने विनीत भाव से उन्हें प्रणाम करके कहा—॥१२-१६॥

वैश्य उवाच ॥२०॥

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले ॥२१॥
पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः ।
विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम् ॥२२॥
वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः ।
सोऽहं न वेदिम पत्राणां कशलाकशलात्मिकाम् ॥२३॥

प्रवृत्ति स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः ।
किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम् ॥२४॥
कथं ते किं नु सद्वृत्ताः दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः ॥२५॥

वैश्य बोला—॥२०॥ राजन् ! मैं धनिकों के कुल में उत्पन्न एक वैश्य हूं। मेरा नाम 'समाधि' है ॥२१॥ मेरे दुष्ट स्त्री-पुत्रों ने धन के लोभ में आकर मुझे घर से निकाल दिया है। मैं इस समय धन, स्त्री और पुत्र से वंचित हूं। विश्वसनीय बन्धु-बान्धवों ने मेरी ही सम्पत्ति छीनकर मुझे निकाल दिया। इसलिए दुखी हो मैं यहां चला आया हूं। यहां रहकर मैं इस बात को नहीं जानता कि मेरे पुत्रों की, स्त्रियों की और आत्मीयों की कुशल है या नहीं। इस समय घर में वे कुशल से रहते हैं अथवा अकुशल से ॥२२-२४॥ वे मेरे पुत्र कैसे हैं ? क्या वे सदाचारी हैं अथवा दुराचारी हो गये हैं ? ॥२५॥

राजोवाच ॥२६॥

यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः ॥२७॥

तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ॥२८॥

राजा ने पूछा—॥२६॥ जिन लोभी स्त्री-पुत्र आदि ने धन के कारण तुम्हें घर से निकाल दिया, उनके प्रति तुम्हारे मन में इतना मोह क्यों है?॥२७-२८॥

वैश्य उवाच ॥२६॥

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः ॥३०॥
किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः ।
यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः ॥३१॥
पतिस्वजनहार्दं च हार्दि तेष्वेव मे मनः ।
किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते ॥३२॥
यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु ।
तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते ॥३३॥
करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ॥३४॥

वैश्य बोला—॥२६॥ आप जो बात कह रहे हैं, वह सच है ॥३०॥ किन्तु क्या करूं, मेरा मन निष्ठुर नहीं है। जिन्होंने धन के लोभ में पड़कर पिता के प्रति श्रद्धा, पति के प्रति प्रेम तथा स्वजन के प्रति अनुराग को तिलाञ्जलि दे, मुझे घर से निकाल दिया है, उन्हीं के प्रति मेरे हृदय में इतनी ममता है। हे महामते! गुण हीन सम्बन्धियों के प्रति जो मेरा चित्त इस प्रकार प्रेममग्न हो रहा है, यह क्या है—इस बात को मैं जान कर भी नहीं जान पाता। उनके लिए मैं लम्बी साँसें ले रहा हूं और मेरा मन अत्यन्त दुःखित हो रहा है ॥३१-३३॥ उन लोगों में प्रेम का सर्वथा अभाव है, तो भी उनके प्रति जो मेरा मन निष्ठुर नहीं हो पाता, इसके लिए क्या करूं? ॥३४॥

मार्कण्डेय उवाच ॥३५॥

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ ॥३६॥
समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः ।
कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम् ॥३७॥
उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥३८॥

मार्कण्डेय जी बोले—॥३५॥ हे ब्रह्मन्! तदनंतर राजाओं में श्रेष्ठ सुरथ और वह समाधि नामक वैश्य दोनों साथ-साथ मुनि की सेवा में उपस्थित हुए और उनके साथ यथायोग्य न्यायानुकूल विनयपूर्ण बर्ताव करके बैठ गये। इसके बाद वैश्य और राजा ने कुछ वार्तालाप आरम्भ किया ॥३६-३८॥

राजोवाच ॥३९॥

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ॥४०॥
दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना।
ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि ॥४१॥

राजा ने कहा—॥३९॥ भगवन्! मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूं, उसे कृपा करके बताइए ॥४०॥ मेरा चित्त अपने वश में नहीं है, इसलिए यह बात मेरे मन को बहुत दुःख देती है। मुनिश्रेष्ठ! जो राज्य मेरे हाथ से चला गया है, उसमें और उसके सम्पूर्ण विभागों में मेरी ममता हो रही है ॥४१॥ यह जानते हुए भी कि वह अब मेरा नहीं है, अज्ञानी की भाँति मुझे उसके लिए दुःख होता है, इसका क्या कारण है? इधर यह वैश्य भी घर से

जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम।
अयं च निष्कृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ॥४२॥
स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति।
एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ ॥४३॥
दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ।
तत्किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि ॥४४॥
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ॥४५॥

अपमानित होकर आया है। इसके पुत्र, स्त्री और नौकरों ने इसको छोड़ दिया है ॥४२॥ आत्मीय जनों ने इसका परित्याग कर दिया है तो भी इसके हृदय में उनके प्रति अत्यन्त स्नेह है। इस प्रकार यह तथा मैं दोनों ही बहुत दुखी हैं ॥४३॥ जिसमें प्रत्यक्ष दोष देखा है, उस विषय के लिए भी हमारे मन में ममता के कारण आकर्षण पैदा हो रहा है। हे महाभाग! हम दोनों समझदार हैं तो भी हममें जो मोह पैदा हुआ है, यह क्या है? विवेकशून्य पुरुष

की भांति मुझ में और इसमें भी यह मूढ़ता स्पष्ट दिखाई देती है ॥४४-४५॥

ऋषिरुवाच ॥४६॥

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे ॥४७॥
विषयश्च महाभाग याति चैवं पृथक् पृथक् ।
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे ॥४८॥
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ।
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं तु ते न हि केवलम् ॥४९॥
यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः ।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणणाम् ॥५०॥

ऋषि बोले—॥४६॥ महाभाग ! सब जीवों को विषयों को समझने का ज्ञान है ॥४७॥ और हे महाभाग ! विषय भी सबके लिए अलग-अलग हैं । कुछ प्राणी दिन में नहीं देखते ॥४८॥ तथा कुछ जीव ऐसे हैं जो दिन और रात्रि में

बराबर ही देखते हैं यह ठीक है कि मनुष्य समझदार होते हैं । किन्तु केवल वे ही ऐसे नहीं होते ॥४९॥ पशु-पक्षी आदि सभी प्राणियों में बुद्धि होती है । मनुष्यों का ज्ञान भी वैसा ही होता है, जैसा उन मृगों और पक्षियों का होता है ॥५०॥ तथा जैसा मनुष्यों का होता है वैसा ही उन मृग-पक्षी आदिकों का

मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः ।
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु ॥५१॥
कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा ।
मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति ॥५२॥
लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान् किं न पश्यसि ।
तथापि ममतावर्ते मोहगर्ते निपातिताः ॥५३॥
महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणां ।
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ॥५४॥

महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यते जगत् ।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ॥५५॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥५६॥
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ॥५७॥
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥५८॥

होता है। यह तथा अन्य बातें भी प्रायः दोनों में समान ही हैं। समझ होने पर भी इन पक्षियों को तो देखो, ये स्वयं भूख से पीड़ित होते हुए भी मोहवश बच्चों की चोंच में कितने चाव से अन्न के दाने डाल रहे हैं। पुरुष-श्रेष्ठ! क्या तुम देखते नहीं कि ये मनुष्य समझदार होते हुए भी लोभवश अपने किये हुए उपकार का बदला पाने के लिये पुत्रों की कामना करते हैं? यद्यपि उन सब में समझ की कमी नहीं है तथापि वे संसार की स्थिति बनाये रखने वाली

भगवती महामाया के प्रभाव द्वारा ममतामय भंवर से युक्त मोह के गहरे गड्ढे में गिराये जाते हैं। इसलिए इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये। जगदीश्वर भगवान् विष्णु की योगनिद्रा रूपी जो भगवती महामाया हैं, उन्हीं द्वारा यह जगत् मोहित हो रहा है। वे भगवती महामाया देवी ज्ञानियों के भी चित्त को बलपूर्वक खींचकर मोहग्रस्त कर देती हैं। वे ही इस सारे चराचर जगत् की सृष्टि करती हैं तथा वे ही प्रसन्न होने पर मनुष्यों को मुक्ति के लिए वरदान देती हैं। वे ही पराविद्या संसार-बंधन और मोक्ष की कारणभूता सनातनी देवी तथा सम्पूर्ण ईश्वरों की भी अधीश्वरी हैं ॥५१-५८॥

राजोवाच ॥५९॥

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान् ॥६०॥
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज ।
यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ॥६१॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥६२॥

राजा ने पूछा—॥५९॥ भगवन्! जिन्हें आप महामाया कहते हैं,

वे देवी कौन हैं ? ब्रह्मन् ! उनकी उत्पत्ति कैसे हुई ? तथा उनके कार्य कौन-कौन से हैं ? ब्रह्म-वेत्ताओं में श्रेष्ठ-महर्षे ! उन देवी का जैसा प्रभाव हो, जैसा स्वरूप हो और जिस प्रकार प्रादुर्भाव हुआ हो, वह सब मैं आपके मुख से सुनना चाहता हूँ ॥६०-६२॥

ऋषिरुवाच ॥६३॥

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ॥६४॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ।
देवानां कार्यसिद्धयर्थमाविर्भवति सा यदा ॥६५॥
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ।
योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ॥६६॥

ऋषि ने कहा—॥६३॥ राजन् ! वास्तव में तो देवी नित्यस्वरूपा ही हैं। सम्पूर्ण विश्व उन्हीं का रूप है तथा उन्होंने समस्त जगत् व्याप्त कर रक्खा है, तथापि उनका आविर्भाव अनेक प्रकार से होता है, वह मुझसे सुनो।

यद्यपि वे नित्या और अजन्मा हैं, तथापि जब देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए प्रकट होती हैं, उस समय संसार में 'उत्पन्ना' कहलाती हैं।

आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः ।
तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ॥६७॥
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ।
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ॥६८॥
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम् ।
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः ॥६९॥
विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम् ।
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ॥७०॥
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥७१॥

कल्प के अन्त में जब सम्पूर्ण जगत् एक ही महासागर में डूब रहा था

और सबके प्रभु भगवान् विष्णु शेषनाग की शय्या बिछा कर योगनिद्रा में लीन सो रहे थे। उस समय उनके कानों की मैल से दो भयंकर असुर उत्पन्न हुए जो मधु और कैटभ नाम से प्रसिद्ध थे वे दोनों ब्रह्माजी का वध करने को उद्यत हो गए। भगवान् विष्णु के नाभिकमल में विराजमान प्रजापति ब्रह्मा ने जब उन दोनों भयानक असुरों को अपने पास मारने के लिए आता और भगवान् को सोया हुआ देखा तो एकाग्रचित्त होकर उन्होंने भगवान् विष्णु को जगाने के लिए नेत्रों में निवास करने वाली योगनिद्रा की स्तुति आरम्भ की। जो इस विश्व की स्वामिनी, जगत् को धारण करने वाली, संसार का भरण-पोषण और संहार करने वाली तथा तेज स्वरूप भगवान् विष्णु की अनुपम शक्ति हैं, उन्हीं भगवती निद्रादेवी की भगवान् ब्रह्मा स्तुति करने लगे ॥६४-७१॥

ब्रह्मोवाच ॥७२॥

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका ॥७३॥
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ॥७४॥

ब्रह्माजी ने कहा—॥७२॥ देवि! तुम्हीं स्वाहा, तुम्हीं स्वधा और तुम्हीं वषट्कार हो। स्वर भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हीं प्राणदायिनी सुधा हो। नित्य अक्षर प्रणव में अकार, उकार, मकार इन तीन मात्राओं के रूप में तुम्हीं स्थित हो। तथा इन तीन मात्राओं के अतिरिक्त इस प्रकार वहां जो विन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा है, जिसका विशेष रूप से उच्चारण नहीं किया जा सकता, वह भी तुम्हीं हो (इस तरह ओंरूप हो) हे देवि! तुम्हीं संध्या, सावित्री तथा परा जननी हो। देवि! तुम्हीं इस सकल ब्रह्मांड को धरण करती हो।

त्वमेव संध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा।
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ॥७५॥
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा।
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ॥७६॥
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये।
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ॥७७॥

महामोहा च भवती महादेवी महासुरी।
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ॥७८॥

तुमसे ही इस जगत् की सृष्टि होती है। तुम्हीं से इसका लालन-पालन होता है और सदा तुम्हीं कल्प के अन्त में सबको अपना ग्रास बना लेती हो। सृष्टि जगन्मयी देवि! इस जगत् की उत्पत्ति के समय तुम सृष्टिरूपा हो, पालन-काल में स्थितिरूपा हो तथा कल्पान्त के समय संहाररूपा हो। तुम्हीं महा-विद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोहरूपा, महादेवी और महासुरी हो। तुम्हीं तीनों गुणों—सत्त्व, रज, तम को उत्पन्न करने वाली, सबकी

कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा।
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ॥७९॥
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च।
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ॥८०॥
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा।

सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ॥८१॥

प्रकृति हो। भयंकर कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि तुम्हीं हो। तुम्हीं श्री, ईश्वरी, ह्री और तुम्हीं बोधस्वरूपा बुद्धि हो। लज्जा, शान्ति और क्षमा, पुष्टि, तुष्टि भी तुम्हीं हो। तुम शूलधारिणी, घोररूपा, खड्गधारिणी, तथा गदा, चक्र, शंख और धनुष धारण करने वाली हो। बाण, भुशुण्डी और परिघ—ये भी तुम्हारे अस्त्र हैं। तुम सौम्य और सौम्यतर हो—इतना ही नहीं, जितने भी सौम्य एवं सुन्दर पदार्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा तुम अत्यधिक सुन्दरी हो। पर और अपर—सबसे परे रहने वाली परमेश्वरी

परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी।
यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ॥८२॥
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा।
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् ॥८३॥
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः।
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ॥८४॥

कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्।
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ॥८५॥

शक्ति तुम्हीं हो। अखिलात्मिके देवि। कहीं भी सत्-असत् रूप जो कुछ वस्तुएँ हैं, उन सबकी जो कुछ शक्ति है, वह तुम्हीं हो। ऐसी अवस्था में तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है! जो इस जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन भगवान् को भी तुमने निद्रा के अधीन कर दिया है, तो तुम्हारी स्तुति करने में यहाँ कौन समर्थ हो सकता है। मुझको, भगवान् शंकर को तथा भगवान् विष्णु को भी तुमने शरीर धारण कराया है, अतः तुम्हारी स्तुति करने की शक्ति किस में है। देवि! तुम तो अपने इन उदार प्रभावों से ही विशेष स्तुत्य हो। ये जो दोनों दुर्धर्ष असुर मधु-कैटभ हैं, इन को मोह में डाल

मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ।
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ॥८६॥
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥८७॥

दो और जगदीश्वर भगवान् विष्णु को शीघ्र जगा दो। साथ ही इनके भीतर इन दोनों असुरों को मार डालने की बुद्धि उत्पन्न कर दो ॥७३-८७॥

ऋषिरुवाच ॥८८॥

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ॥८९॥
विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ।
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥९०॥
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः ॥९१॥

ऋषि बोले—॥८८॥ हे राजन्! जब ब्रह्माजी ने वहाँ मधु और कैटभ को मारने के उद्देश्य से भगवान् विष्णु को जगाने के लिए तमोगुण की अधिष्ठात्री देवी योगनिद्रा की इस प्रकार स्तुति की, तब वे भगवान् के नेत्र, नासिका, बाहु, हृदय और वक्षस्थल से निकल कर अप्रकट जन्म वाले ब्रह्मा की दृष्टि के समक्ष खड़ी हो गयीं। योगनिद्रा से मुक्त होने पर जगत् के

एकार्णवेऽहि शयनात्ततः स ददृशे च तौ।
मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ॥९२॥
क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ।
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ॥९३॥
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः।
तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ॥९४॥
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥९५॥

स्वामी जनार्दन उस एकार्णव के जल में शेषनाग की शैया से जाग उठे। फिर उन्होंने उन दोनों असुरों को देखा। वे दुष्टात्मा मधु और कैटभ अत्यन्त बलवान् तथा पराक्रमी थे और क्रोध से लाल-लाल आंखें किये ब्रह्माजी को खा जाना चाहते थे। तब भगवान् श्रीहरि ने उठकर उन दोनों के साथ पांच हजार वर्षों तक केवल बाहु-युद्ध किया। वे दोनों भी अत्यन्त बल के कारण मदोन्मत्त हो रहे थे। इधर माया ने भी उन्हें मोह में डाल रक्खा था। इसलिए

वे भगवान् विष्णु से कहने लगे—हम तुम्हारी वीरता से प्रसन्न हैं। तुम हम लोगों से किसी वर की कामना करो ॥८९-९५॥

श्रीभगवानुवाच ॥९६॥

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥९७॥
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम ॥९८॥

श्री भगवान् बोले—॥९६॥ यदि तुम दोनों मुझ पर प्रसन्न हो तो अब मेरे हाथ से मारे जाओ। बस, इतना-सा ही मैंने वर मांगा है। यहां दूसरे किसी वर से क्या लाभ है ॥९७-९८॥

ऋषिरुवाच ॥९९॥

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् ॥१००॥
विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥१०१॥

ऋषि ने कहा ॥९९॥ इस प्रकार धोखे में आ जाने पर जब उन्होंने सम्पूर्ण

जगत् में जल-ही-जल देखा तो कमलनेत्र भगवान् विष्णु से कहा—जहाँ पृथ्वी जल में डूबी हुई न हो, वहीं हमारा वध करो ॥१००-१०१॥

ऋषिरुवाच ॥१०२॥

तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता ।
कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥१०३॥
एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् ।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते ॥ऐं ॐ१०४॥

ऋषि बोले—॥१०२॥ तब 'तथास्तु' कह कर शंख, चक्र और गदा धारण करने वाले भगवान् ने उन दोनों के मस्तक अपनी जांघ पर रखकर चक्र से काट डाले। इस प्रकार ये देवी महामाया ब्रह्माजी की स्तुति करने पर स्वयं प्रकट हुईं। अब आगे तुमसे उनके प्रभाव का वर्णन करता हूँ, सुनो ॥१०३-१०४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
उवाच १४, अर्धश्लोकाः २४, श्लोकाः ६६, एवमादितः १०४ ॥

श्री दुर्गायै नमः

द्वितीयोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ मध्यमचरित्रस्य विष्णुर्ऋषिर्महालक्ष्मीर्देवता उष्णिक् छन्दः शाकम्भरी शक्तिः दुर्गा बीजं वायुस्तत्त्वं यजुर्वेदः स्वरूपं श्रीमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थं मध्यमचरित्रजपे विनियोगः ।

ध्यानम्

ॐ अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥

'ॐ ह्रीं' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा ।
महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे ॥ २ ॥

तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम्।
जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः ॥ ३ ॥
ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम्।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ ॥ ४ ॥

ऋषि बोले—॥१॥ पूर्वकाल में देवताओं और असुरों में पूरे सौ वर्ष तक संग्राम हुआ था। उसमें असुरों का सेनापति महिषासुर था और देवताओं के नायक इन्द्र थे। उस युद्ध से देवताओं की सेना महाबली असुरों से पराजित हो गयी। सम्पूर्ण देवताओं को जीतकर महिषासुर इन्द्र बन बैठा ॥२-३॥ तब परास्त देवता प्रजापति ब्रह्माजी को आगे करके उस स्थान पर गये; जहां भगवान् शंकर और विष्णु विराजमान थे ॥४॥ देवताओं ने महिषासुर के

यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम्।
त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥ ५ ॥
सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च।

अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ६ ॥
स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि।
विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ॥ ७ ॥
एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम्।
शरणं वः प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥ ८ ॥

पराक्रम तथा अपनी पराजय का पूर्ण वृत्तांत उन दोनों देवेश्वरों को विस्तार पूर्वक सुनाया ॥५॥ वे बोले—भगवन्! महिषासुर, सूर्य, इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण, वायु, चन्द्रमा तथा अन्य देवताओं के भी अधिकार छीन कर स्वयं ही सबका अधिष्ठाता बन बैठा है ॥६॥ उस दुरात्मा महिष ने समस्त देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया है। अब वे मनुष्यों की भांति पृथ्वी पर विचरते हैं ॥७॥ दैत्यों की ये सारी करतूतें हमने आप लोगों से कह सुनाईं। अब हम आपकी ही शरण में आये हैं! उसके वध का कोई उपाय सोचिए ॥८॥

इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः।
चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ ॥ ९ ॥
ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः।
निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शङ्करस्य च ॥१०॥
अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः।
निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥११॥

देवताओं के वचन सुनकर भगवान् और शिव ने असुरों पर बड़ा क्रोध किया। उनकी भौंहें तन गईं और मुंह लाल हो गया ॥९॥ तब अत्यन्त क्रोध में भरे हुए चक्रपाणि श्री विष्णु के मुख से एक महान् तेज प्रकट हुआ। इसी प्रकार ब्रह्मा, शंकर तथा इन्द्र आदि दूसरे देवताओं के शरीर से भी बड़ा भारी तेज निकला। वह सब मिलकर एक हो गया ॥१०-११॥ महान् तेज का पुंज चमकता हुआ पर्वत-सा जान पड़ा। देवताओं ने देखा, वहां उसकी

अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम्।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥१२॥
अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥१३॥

ज्वालाएं सम्पूर्ण दिशाओं में फैल रही थीं ॥१२॥ सम्पूर्ण देवताओं के शरीर से प्रकट हुए उस तेज की कहीं तुलना नहीं थी। एकत्र होने पर वह एक नारी के रूप में परिणत हो गया और अपने प्रकाश से तीनों लोकों में व्याप्त जान पड़ा ॥१३॥ भगवान् शंकर का जो तेज था, उससे उस देवी का मुख प्रकट

यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम्।
याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा ॥१४॥
सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत्।
वारुणेन च जङ्घोरू नितम्बस्तेजसा भुवः ॥१५॥

हुआ। यमराज के तेज से उसके सिर में बाल निकल आये। श्री विष्णु भगवान् के तेज से उसकी भुजाएं पैदा हुईं ॥१४॥ चन्द्रमा के तेज से दोनों स्तनों का और इन्द्र के तेज से मध्य भाग (कटिप्रदेश) का प्रादुर्भाव हुआ। वरुण के तेज से जंघाएं और पिंडलियाँ तथा पृथ्वी के तेज से नितम्ब भाग प्रकट हुए ॥१५॥

ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कतेजसा।
वसूनां च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका ॥१६॥
तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा।
नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा ॥१७॥

ब्रह्मा के तेज से दोनों चरण और सूर्य के तेज से उनकी अँगुलियाँ हुईं। वसुओं के तेज से हाथों की अँगुलियां और कुबेर के तेज से नासिका प्रकट हुई ॥१६॥ उस देवी के दाँत प्रजापति के तेज से और नेत्र अग्नि के तेज से प्रकट हुए थे ॥१७॥ उस की भौंहें संध्या के और कान वायु के तेज से उत्पन्न हुए थे। इसी प्रकार अन्यान्य देवताओं के तेज से भी उस कल्याणमयी देवी का आविर्भाव हुआ ॥१८॥ इसके बाद देवताओं के तेज-पुंज से प्रकट हुई देवी को

भ्रुवौ च संध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च।
अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा ॥१८॥
ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः ॥१९॥
शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक्।
चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः ॥२०॥

देखकर महिषासुर के सताये हुए देवता बहुत प्रसन्न हुए ॥१९॥ पिनाकधारी भगवान् शंकर ने अपने शूल से एक शूल निकाल कर उन्हें दिया। फिर भगवान् विष्णु ने भी चक्र से चक्र उत्पन्न करके भगवती को अर्पण किया ॥२०॥ वरुण

शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः।
मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥२१॥

ने भी शंख भेंट किया, अग्नि ने उन्हें शक्ति दी। और वायु ने धनुष तथा बाण से भरे हुए दो तरकस प्रदान किए ॥२१॥ हजार नेत्रों वाले देवराज इन्द्र ने

वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य कुलिशादमराधिपः।
ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात् ॥२२॥
कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ।
प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् ॥२३॥
समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म च निर्मलम् ॥२४॥

अपने वज्र से वज्र उत्पन्न करके दिया और ऐरावत हाथी से उतारकर एक घण्टा भी प्रदान किया ॥२२॥ यमराज ने अपने कालदण्ड से दण्ड, वरुण ने पाश, प्रजापति ने स्फटिकाक्ष की माला तथा ब्रह्माजी ने कमण्डलु भेंट किया ॥२३॥ सूर्य ने देवी के समस्त रोम-कूपों में अपनी किरणों का तेज भर दिया। काल ने उन्हें चमकती हुई ढाल और तलवार दी ॥२४॥ क्षीर सागर ने उज्ज्वल हार तथा कभी न फटने वाले दो दिव्य वस्त्र भेंट किए। साथ ही उन्होंने दिव्य चूड़ामणि, दो कुण्डल, कंगन, अर्धचन्द्र, सब बाहुओं के लिये

क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे।
चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च ॥२५॥
अर्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु।
नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥२६॥
अङ्गुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च।
विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम् ॥२७॥
अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम्।
अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ॥२८॥

केयूर, दोनों चरणों के लिये निर्मल नूपुर, गले की सुन्दर हँसली और सब अँगुलियों में धारण करने के लिये रत्नों की बनी अँगूठियाँ भी दीं। विश्वकर्मा ने उन्हें अत्यन्त निर्मल फरसा भेंट किया ॥२५-२७॥ साथ ही अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और अभेद्य कवच दिये, इसके सिवा मस्तक और वक्षःस्थल पर धारण करने के लिए कभी न कुम्हलाने वाले कमलों की मालाएं दीं ॥२८॥

अददज्जलधिस्तस्यै पङ्कजं चातिशोभनम्।
हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥२९॥
ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः।
शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम् ॥३०॥
नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम्।
अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥३१॥
सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः।
तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ॥३२॥

सभुव्र ने उन्हें सुन्दर कमल का फूल भेंट किया, हिमालय ने सवारी के लिये सिंह तथा भांति-भांति के रत्न अर्पित किये ॥२९॥ कोषपाल कुबेर ने मधु से भरा पान-पात्र दिया तथा सम्पूर्ण नागों के राजा शेष ने, जो इस पृथ्वी को धारण करते हैं, उन्हें बहुमूल्य मणियों से विभूषित नाग-हार भेंट दिया। इसी

प्रकार अन्य देवताओं ने भी आभूषण और अस्त्र-शस्त्र देकर देवी का सम्मान किया। तब देवी ने बारंबार अट्टहासपूर्वक उच्च स्वर से गर्जना की। उनके भयंकर नाद से सम्पूर्ण आकाश गूंज उठा ॥३०-३२॥ देवी का वह अत्यन्त उच्च स्वर से किया हुआ सिंहनाद कहीं समा न सका, आकाश उसके सामने छोटा प्रतीत होने लगा। उससे बड़े जोर की प्रतिध्वनि हुई, जिससे

अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत्।
चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे ॥३३॥
चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः।
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ॥३४॥

सम्पूर्ण विश्व में हलचल मच गयी और समुद्र कांप उठे ॥३३॥ पृथ्वी डोलने लगी और समस्त पर्वत हिलने लगे। उस समय देवताओं ने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ सिंहवाहिनी भवानी से कहा—'हे देवि! तुम्हारी जय हो' ॥३४॥ साथ ही महर्षियों ने भक्तिभाव से विनम्र होकर उनका स्तवन किया। सम्पूर्ण

तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ।
दृष्टवा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ॥३५॥
संनद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः ।
आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः ॥३६॥
अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ।
स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा ॥३७॥

त्रिलोकी को क्षुब्ध देख असुरगण अपनी समस्त सेना को कवच आदि से सुसज्जित कर, हाथों में हथियार ले सहसा उठकर खड़े हुए। उस समय महिषासुर, ने बड़े क्रोध में आकर कहा—'ओह ! यह क्या हो रहा है। फिर वह सपूर्ण दैत्यों से घिरा हुआ उस सिंहनाद की ओर लक्ष्य करके दौड़ा और आगे पहुँच उसने देवी को देखा, जो अपनी प्रभा से तीनों लोकों को प्रकाशित कर रही थीं ॥३५-३७॥ उनके चरणों के भार से पृथ्वी दबी जा रही थी। मस्तक के मुकुट से आकाश में रेखा-सी खिच रही थी तथा वे अपने धनुष की

पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम् ।
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम् ॥३८॥
दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद् व्याप्य संस्थिताम् ।
ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम् ॥३९॥
शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम् ।
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः ॥४०॥
युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः ।
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः ॥४१॥

टंकार से सातों पातालों को क्षुब्ध किये देती थीं ॥३८॥ देवी अपनी सहस्रों भुजाओं से सम्पूर्ण दिशाओं को आच्छादित करके खड़ी थीं। तदनन्तर उनके साथ दैत्यों का युद्ध छिड़ गया ॥३९॥ नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों के प्रहारों से सम्पूर्ण दिशायें चमकने लगीं। चिक्षुर नामक एक असुर महिषासुर का

सेनानायक था ॥४०॥ वह देवी के साथ युद्ध करने लगा। अन्य दैत्यों की चतुरंगिनी सेना के साथ आकर उदग्र नामक महादैत्य ने भी लोहा लिया ॥४१॥ एक करोड़ रथियों को साथ लेकर, महाहनु नामक दैत्य भी युद्ध करने

अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः।
पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ॥४२॥
अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे।
गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः परिवारितः ॥४३॥

लगा। तलवार के समान तीखे रोओं वाला असिलोमा नाम का महादैत्य पाँच करोड़ रथी सैनिकों सहित युद्ध में आ डटा ॥४२॥ साठ लाख रथियों से घिरा हुआ बाष्कल नामक दैत्य भी युद्ध में लड़ने लगा ॥४३॥ परिवारित हाथी-सवारों और घुड़सवारों के अनेक दलों से तथा एक करोड़ रथियों की सेना लेकर युद्ध करने लगा। बिडाल नामक असुर पाँच अरब रथियों से घिर कर लोहा लेने लगा। इनके अतिरिक्त और भी हजारों महादैत्य रथ, हाथी और

वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत।
बिडालाख्योऽयुतानां च पञ्चाशद्भिरथायुतैः ॥४४॥
युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः।
अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः ॥४५॥
युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः।
कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ॥४६॥
हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः।
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥४७॥

घोड़ों की सेना साथ लेकर वहां देवी के साथ युद्ध करने लगे। स्वयं महिषासुर और उस रणभूमि में कोटि-कोटि सहस्र रथ, हाथी और घोड़ों की सेना से घिरा हुआ खड़ा था। वे दैत्य देवी के साथ तोमर, मूसल, खड्ग, भिन्दिपाल, शक्ति, परशु और पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार करते हुए युद्ध कर

रहे थे। कुछ दैत्यों ने उन पर शक्ति से प्रहार किया तो कुछ ने पाश फेंके ॥४४-४८॥ तथा कुछ दूसरे दैत्यों ने खड्ग प्रहार करके देवी को मार डालने

युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः।
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे ॥४८॥
देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः।
सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ॥४९॥
लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी।
अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ॥५०॥
मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी।
सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेशरी ॥५१॥
चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः।
निःश्वासान् मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका ॥५२॥

ए एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः।
युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः ॥५३॥

का उद्योग किया। देवी ने भी क्रोध में भरकर खिलवाड़ में ही अपने अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करके दैत्यों के वे समस्त अस्त्र-शस्त्र काट डाले। उनके मुख पर परिश्रम या थकान का रंचमात्र भी चिन्ह नहीं था, देवता और ऋषि उनकी स्तुति कर रहे थे और भगवती परमेश्वरी दैत्यों के शरीरों पर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा कर रही थीं। देवी का वाहन सिंह भी क्रोध में भर कर ग्रीवा के बालों को हिलाता हुआ असुरों की सेना में इस प्रकार विचरण करने लगा, मानो वनों में दावानल फैल रहा हो। रणभूमि में दैत्यों के साथ युद्ध करती हुई अम्बिका देवी ने जितने निःश्वास छोड़े, वे सभी तत्काल सैकड़ों-हजारों गणों के रूप में प्रकट हो गये और परशु, भिन्दिपाल, खड्ग तथा पट्टिश आदि अस्त्रों द्वारा असुरों का सामना करने लगे ॥४९-५३॥ देवी की शक्ति से बढ़े हुए वे गण असुरों का नाश करते हुए नगाड़ा और शंख आदि बाजे बजाने लगे ॥५४॥ उस संग्राम महोत्सव में कितने

नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिताः।
अवादयन्त पटहान् गणाः शङ्खांस्तथापरे ॥५४॥
मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे।
ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः ॥५५॥
खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान्।
पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् ॥५६॥

ही गण मृदंग बजा रहे थे। तबनन्तर देवी ने त्रिशूल से, गदा से, शक्ति की वर्षा से और खड्ग आदि से सैकड़ों महादैत्यों का विनाश कर डाला। कितनों को घण्टों के भयंकर नाद से बेहोश करके मार गिराया ॥५५-५६॥

असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत्।
केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ॥५७॥
विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते।

वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः ॥५८॥
केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि।
निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे ॥५९॥

बहुतेरे दैत्यों को पाश से बांध कर धरती पर घसीटा। कितने ही दैत्य उनकी तीक्ष्ण तलवार की धार से दो-दो टुकड़े हो गये। कितने ही गदा की चोट से घायल हो धरती पर सो गये और कितने ही मूसल की मार से अत्यन्त घायल होकर रक्त वमन करने लगे। कुछ दैत्य शूल की मार से छाती फट जाने के कारण पृथ्वी पर ढेर हो गये। उस युद्ध भूमि में बाण-समूह की वर्षा से कितने ही असुरों की कमर टूट गयी ॥५७-५९॥

श्येनानुकारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः।
केषांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥६०॥
शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः।
विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः ॥६१॥

एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधा कृताः।
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः ॥६२॥
कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः।
ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः ॥६३॥

बाज की तरह झपट्टा मारने वाले दैत्यगण अपने प्राणों से हाथ धोने लगे। किन्हीं की बाँहें छिन्न-भिन्न हो गईं। कितनों की गर्दनें कट गयीं। कितने ही दैत्यों के मस्तक कट-कट कर गिरने लगे। कुछ लोगों के शरीर के मध्य भाग ही विदीर्ण हो गये। कितने ही महादैत्य जांघें कट जाने से पृथ्वी पर गिर पड़े। कितनों ही को देवी ने एक बाँह, एक पैर और एक नेत्र वाले करके दो टुकड़ों में चीर डाला। कितने ही दैत्य मस्तक कट जाने पर भी गिर कर फिर उठ जाते और केवल धड़ के ही रूप में अच्छे-अच्छे हथियार लेकर देवी के साथ लड़ाई करने लगते थे। दूसरे धड़ युद्ध के बाजों की लय पर नाचते थे। ॥६०-६३॥ कितने ही बिना सिर क धड़ हाथों में तलवार, शक्ति और ऋष्टि लिये दौड़ते थे तथा दूसरे-दूसरे महादैत्य 'ठहरो! ठहरो!!' यह कहते हुए देवी

कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः ॥६४॥
पातितैः रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा।
अगम्या साभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः ॥६५॥
शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः।
मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥६६॥

को युद्ध के लिये ललकारते थे। जहां घोर संग्राम हुआ था, वहां की धरती पर देवी के गिराये हुए हाथी-घोड़ों और असुरों के शरीर से ॥६४-६५॥ इतनी अधिक मात्रा में रक्त बहा कि थोड़ी ही देर में वहां खून की नदियां बहने लगीं ॥६६॥ जगदम्बा ने असुरों की विशाल सेना को क्षण भर में नष्ट कर दिया, ठीक उसी तरह जैसे तृण और काठ के भारी ढेर को आग कुछ ही क्षणों में भस्म कर देती है ॥६७॥ और वह सिंह भी गर्दन के बालों को हिला-हिलाकर जोर-जोर से गर्जना करता हुआ दैत्यों के शरीर से मानो उनके प्राण

क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका।
निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥६७॥
स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेशरः।
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥६८॥
देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः।
यथैषां तुतुषुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥ॐ॥६९॥

चुने लेता था ॥६८॥ वहां देवी के गणों ने भी उन महादैत्यों के साथ ऐसा युद्ध किया, जिससे देवतागण उन पर आकाश से पुष्पवृष्टि करने लगे और उन सबसे बहुत सन्तुष्ट हुए ॥६९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुरसैन्यवधो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ऋषि १, श्लोकाः ६८, एवं ६९, एवमादितः १७३ ॥

तृतीयोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐउद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥१॥

निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम् ॥२॥

ऋषि बोले—॥१॥ असुरों की सेना को इस प्रकार तहस-नहस होते देख महादैत्य सेनापति चिक्षुर क्रोध में भर कर अम्बिका देवी के ऊपर इस

स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः।
यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः ॥३॥
तस्यच्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान्।
जघान तुरगान् बाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम् ॥४॥
चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम्।
विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः ॥५॥

प्रकार बाणों की बौछार करने लगा ॥२॥ जैसे बादल मेरुगिरि के शिखर पर पानी की धारा बरसा रहा हो ॥३॥ तब देवी ने अपने बाणों से उसके बाण समूह को अनायास ही काटकर उसके घोड़ों और सारथी को भी मार डाला ॥४॥ साथ ही उसके धनुष तथा अत्यन्त ऊंची ध्वजा को भी तत्काल काट गिराया। धनुष कट जाने पर उसके अंगों को अपने बाणों से बींध डाला ॥५॥ धनुष, रथ, घोड़े और सारथी के नष्ट हो जाने पर वह असुर ढाल और तलवार लेकर

सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः ॥६॥
सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ॥७॥
तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन।
ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ॥८॥
चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः।
जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात् ॥९॥

देवी की ओर दौड़ा ॥६॥ उसने तेज धार वाली तलवार से सिंह के मस्तक पर चोट करके देवी की बायीं भुजा में भी बड़े वेग से प्रहार किया ॥७॥ राजन्! देवी की भुजा से टकराते ही वह तलवार खण्ड-खण्ड होकर गिर पड़ी। फिर तो क्रोध से लाल आँखें किए उस राक्षस ने शूल हाथों में ले लिया ॥८॥ और भगवती भद्रकाली के ऊपर चलाया। वह शूल आकाश से गिरते हुए सूर्य-मण्डल की भांति

दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत।
तच्छूलं शतधा तेन नीतं स च महासुरः ॥१०॥
हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥११॥
सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम्।
हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥१२॥

अपने तेज से चमक उठा ॥९॥ उस शूल को अपनी ओर आते देख देवी ने भी शूल का प्रहार किया। उससे राक्षस के शूल के सैकड़ों टुकड़े हो गये, साथ ही महादैत्य चिक्षुर की भी धज्जियां उड़ गईं और वह प्राणों से भी हाथ धो बैठा ॥१०॥ महिषासुर के उस पराक्रमी सेनापति चिक्षुर के मारे जाने पर देवताओं को पीड़ा देने वाला चामर असुर हाथी पर चढ़कर आया। उसने भी देवी के ऊपर शक्ति का प्रहार किया किन्तु जगदम्बा ने उसे अपने हुंकार से ही आहत एवं निष्प्रभ कर तत्काल पृथ्वी पर गिरा दिया ॥११-१२॥

भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः।
चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ॥१३॥
ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरे स्थितः।
बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥१४॥
युद्ध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥१५॥

शक्ति को टूटा देख चामर बड़ा क्रोधित हुआ। अब उसने शूल चलाया, किन्तु देवी ने उसे भी अपने बाणों द्वारा काट डाला ॥१३॥ इतने में ही देवी का सिंह उछल कर हाथी के मस्तक पर चढ़ बैठा और उस दैत्य के साथ खूब जोर का बाहु-युद्ध होने लगा ॥१४॥ वे दोनों लड़ते-लड़ते हाथी से पृथ्वी पर आ गए और अत्यन्त क्रोध में भरकर एक-दूसरे पर बड़े भयंकर प्रहार करते हुए लड़ने लगे ॥१५॥ तत्पश्चात् सिंह बड़े वेग से आकाश की ओर उछला और उधर से गिरते समय उसने पंजों की मार से चामर का सिर धड़ से अलग कर

ततो वेगात् खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा ।
करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम् ॥१६॥
उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः ।
दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥१७॥
देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् ।
बाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम् ॥१८॥

दिया ॥१६॥ इसी प्रकार उदग्र भी शिला और वृक्ष आदि की मार खाकर रण-भूमि में देवी के हाथ से मारा गया तथा कराल भी दांतों, मुक्कों और थप्पड़ों की चोट से धराशायी हो गया ॥१७॥

क्रोध में भरी हुई देवी ने गदा की चोट से उद्धत का कचूमर ही निकाल डाला। भिन्दिपाल से बाष्कल को तथा बाणों से ताम्र और बन्धक को मौत के घाट उतार दिया ॥१८॥ तीन नेत्रों वाली परमेश्वरी ने त्रिशूल से उग्रास्य,

उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम् ।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥१९॥
बिडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः ।
दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥२०॥

उग्रवीर्य तथा महाहनु नामक दैत्यों को मार डाला ॥१९॥ तलवार की चोट से विडाल के मस्तक को धड़ से अलग कर दिया। दुर्धर और दुर्मुख—इन दोनों को भी अपने बाणों से मृत्यु-लोक भेज दिया ॥२०॥

एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः ।
माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान् ॥२१॥
कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान् ।
लाङ्गूलताडितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यां च विदारितान् ॥२२॥

इस प्रकार अपनी सेना का सर्वनाश होता देख महिषासुर ने भैंसे का

रूप धारण करके देवी के गणों को त्रास देना आरम्भ किया ॥२१॥ किन्हीं-किन्हीं को पूंछ से चोट पहुँचाकर, कुछ को सींगों से विदीर्ण करके, कुछ को वेग से, किन्हीं को भीषण नाद से, कुछ को चक्कर देकर और कितनों को

वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च।
निःश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले ॥२३॥
निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः।
सिंहं हन्तुं महादेव्या कोपं चक्रे ततोऽम्बिका ॥२४॥

निःश्वास की वायु के झोंकों से धराशायी कर दिया ॥२२-२३॥ इस प्रकार गणों की सेना को गिराकर वह असुर महादेवी के सिंह को मारने के लिए झपटा। इससे जगदम्बा को बड़ा क्रोध आया ॥२४॥

सोऽपि कोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः।
शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ॥२५॥

वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत।
लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः ॥२६॥
धुतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्घनाः।
श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः ॥२७॥
इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम्।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत् ॥२८॥

उधर महापराक्रमी महिषासुर भी क्रोध में भर कर धरती को खुरों से खोदने लगा तथा अपने सींगों से ऊँचे-ऊँचे पर्वतों को उठाकर फेंकने और गर्जने लगा ॥२५॥ उसके वेग से चक्कर देने के कारण पृथ्वी क्षुब्ध होकर फटने लगी। उसकी पूंछ से टकराकर समुद्र सब ओर से धरती को डुबोने लगा ॥२६॥ हिलते हुए सींगों के प्रहार से विदीर्ण होकर बादलों के टुकड़े-टुकड़े हो गये। उसके श्वास की प्रचण्ड वायु के वेग से उड़े सैकड़ों पर्वत आकाश से गिरने लगे ॥२७॥ इस प्रकार क्रोध में भरे हुए उस महादैत्य को अपनी ओर

आते देख चण्डिका ने उसका वध करने के लिए महान् क्रोध किया ॥२८॥

सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम्।
तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ॥२९॥
ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः।
छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत ॥३०॥
तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः।
तं खड्गचर्मणा सार्धं ततः सोऽभून्महागजः ॥३१॥

उन्होंने पाश फेंककर उस महान् दैत्य को बाँध लिया। बंध जाने पर उसने भैंसे का रूप छोड़ दिया ॥२९॥ और तत्काल सिंह के रूप में प्रकट हो गया। उस अवस्था में जगदम्बा ज्योंही उसका मस्तक काटने को उद्यत हुईं, त्योंही वह तलवार हाथ में लिए पुरुष के रूप में दिखाई देने लगा ॥३०॥ तब देवी ने तुरन्त ही बाणों की वर्षा करके ढाल और तलवार के साथ उस पुरुष को भी बींध डाला। इतने में ही उसने महान् गजराज का

करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च।
कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ॥३२॥
ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः।
तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३३॥
ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम्।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ॥३४॥

रूप बना लिया ॥३१॥ तथा अपनी सूंड से देवी के विशाल सिंह को खींचने और गर्जने लगा। खींचते समय देवी ने तलवार से उसकी सूंड काट डाली ॥३२॥ तब उस महादैत्य ने पुनः भैंसे का शरीर बना लिया और पहले की ही भांति जड़-चेतन सब प्राणियों सहित तीनों लोकों को व्याकुल करने लगा ॥३३॥ तब क्रोध में भरी हुई जगदम्बा चण्डिका बारम्बार उत्तम मधु का पान करने और लाल आंखें करके हंसने लगीं ॥३४॥ उधर वह बल और पराक्रम के मद से मत्त हुआ राक्षस अपने सींगों से चण्डी के ऊपर पर्वतों को फेंकने लगा

ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः।
विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान् ॥३५॥
सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः।
उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥३६॥

॥३५॥ उस समय देवी अपने बाणों के समूह से उसके फेंके हुए पर्वतों को चूर्ण करती हुई बोलीं। बोलते समय उनका मुख मधु के मद से लाल हो रहा था और वाणी लड़खड़ा रही थी ॥३६॥ देवी ने कहा—॥३७॥ ओ मूर्ख! मैं जब तक

देव्युवाच ॥३७॥

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम्।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ॥३८॥

मधु पीती हूँ, तब तक तू क्षण भर के लिए खूब गर्ज ले। मेरे हाथ से यहीं तेरी मृत्यु हो जाने पर अब शीघ्र ही देवता भी गर्जना करेंगे ॥३८॥ ऋषि बोले— ॥३९॥ इतना कहकर देवी उछलीं और उस महादैत्य के ऊपर चढ़ गयीं। फिर

ऋषिरुवाच ॥३९॥

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम्।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ॥४०॥
ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः।
अर्धनिष्क्रान्त एवासीद् देव्या वीर्येण संवृतः ॥४१॥
अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥४२॥

पैर से उसे दबाकर उन्होंने शूल से उसके कण्ठ में आघात किया ॥४०॥ उनके पैर से दबा होने पर भी महिषासुर अपने मुख से दूसरे रूप में बाहर होने लगा। अभी आधे शरीर से ही बाहर निकल पाया था कि देवी ने अपने प्रभाव से उसे रोक दिया ॥४१॥ आधा निकला होने पर भी वह महादैत्य देवी से युद्ध करने लगा। तब देवी ने बड़ी तलवार से उसका मस्तक काट गिराया ॥४२॥ फिर तो हाहाकार करती हुई दैत्यों की सारी सेना भाग गयी तथा सम्पूर्ण

ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत्।
प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ॥४३॥
तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४४॥

देवता अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥४३॥ देवताओं ने दिव्य महर्षियों के साथ दुर्गा देवी की स्तुति की। गन्धर्वराज गान करने लगे तथा अप्सराएँ नाचने लगीं ॥४४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

उवाच ३, श्लोकाः ४१, एवम् ४४, एवमादितः २१७ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐकालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद्दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥१॥

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥२॥

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥३॥

ऋषि बोले—॥१॥ अत्यन्त पराक्रमी दुष्टात्मा महिषासुर तथा उसकी असुर सेना के देवी के हाथ से मारे जाने पर इन्द्र देवता प्रणाम के लिए गर्दन तथा कन्धे झुकाकर उन भगवती दुर्गा की उत्तम वचनों द्वारा स्तुति करने लगे। उस समय उनके अंगों में अत्यन्त हर्ष के कारण रोमांच हो आया था ॥२॥ देवता बोले—सम्पूर्ण देवताओं की शक्ति का समुदाय ही जिनका स्वरूप है तथा जो देवी शक्ति से सम्पूर्ण जगत् में व्यापक हैं, समस्त देवताओं और महर्षियों की पूजनीय, उन जगदम्बा को हम भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं। वे हम लोगों का कल्याण करें ॥३॥

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।

सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥४॥
या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥५॥

जिनके अनुपम प्रभाव और शक्ति का वर्णन करने की सामर्थ्य भगवान् शेषनाग, ब्रह्माजी तथा महादेवजी भी नहीं रखते, हे भगवती चण्डिका सम्पूर्ण जगत् का पालन और अशुभ तथा भय का नाश करने का विचार करें ॥४॥ जो पुण्यात्माओं के घरों में स्वयं ही लक्ष्मी रूप से पापियों के यहां दरिद्रता रूप से, विशुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषों के हृदय में लज्जा रूप से निवास करती हैं, उन आप भगवती दुर्गा को हम नमस्कार करते हैं। देवि ! विश्व का पालन कीजिए

॥५॥ देवि ! आपके इस अगम रूप का, असुरों का नाश करने वाले महान् पराक्रम तथा समस्त देवताओं और दैत्यों के समक्ष युद्ध में प्रकट किये हुए आपके

किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥६॥
हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥७॥

अद्भुत चरित्रों का हम किस प्रकार वर्णन करें ॥६॥ आप सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति में कारण हैं। आप में सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण मौजूद हैं। तो भी दोषों के साथ आपका संसर्ग नहीं जान पाते, आप ही सबका आश्रय

स्थान हैं। यह समस्त जगत् आपका अंशमात्र है, क्योंकि आप सबकी आदिभूता अव्याकृता परा प्रकृति हैं ॥७॥

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥८॥
या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥९॥

देवि ! सम्पूर्ण यज्ञों में जिसके उच्चारण से सब देवता तृप्ति लाभ करते हैं, वह 'स्वाहा' इसलिए आप ही हैं, इसके अतिरिक्त आप पितरों की भी तृप्ति का कारण हैं, इसलिये सब लोग आपको 'स्वधा' कहते हैं ॥८॥ देवि ! जो मोक्ष की प्राप्ति का साधन है, अचिन्त्य महाव्रत स्वरूपा है, जो समस्त दोषों

से रहित, जितेन्द्रिय, तत्त्व को ही सार वस्तु मानने वाले तथा मोक्ष की कामना रखने वाले मुनिजन जिसका अभ्यास करते हैं, वह भगवती परा विद्या आप ही हैं ॥९॥ आप शब्द स्वरूपा हैं, अत्यन्त निर्मल ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम् ।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्त्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री ॥१०॥
मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा ।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥११॥

उद्गीथ के मनोहर पदों के पाठ से युक्त सामवेद का भी आधार आप ही

हैं, आप देवी, त्रयी (तीनों वेद) और भगवती (छहों ऐश्वर्यों से युक्त) हैं। इस विश्व की उत्पत्ति एवं पालन के लिए आप ही वार्ता (कृषि एवं आजीविका) के रूप में प्रकट हुई हैं। आप सम्पूर्ण जगत् की घोर पीड़ा का विनाश करने वाली हैं ॥१०॥ देवि! जिससे समस्त शास्त्रों के सार का ज्ञान होता है, वह मेधाशक्ति आप ही हैं। दुर्गम भवसागर से पार उतारने वाली नौका रूप दुर्गा देवी भी आप ही हैं। आप आसक्तिशून्य हैं। कैटभ के शत्रु भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल में एकमात्र निवास करने वाली भगवती लक्ष्मी तथा चन्द्रशेखर-द्वारा सम्मानित गौरी देवी भी आप ही हैं ॥११॥

ईषत्सहाससममलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम् ।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥१२॥
दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रकुटीकराल-

मुद्यच्छशाङ्क सदृशच्छवि यन्न सद्यः ।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥१३॥
देवि प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि ।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥१४॥

आपका मुख मन्द मुस्कान से सुशोभित, निर्मल, पूर्ण चन्द्रमा के बिम्ब का अनुकरण करने वाला और उत्तम सुवर्ण की मनोहर कान्ति से कमनीय है, तो भी उसे देखकर महिषासुर को क्रोध हुआ और सहसा उसने उस पर प्रहार किया, यह बड़े आश्चर्य की बात है ॥१२॥ हे देवि ! वही मुख जब क्रोध आने पर उदय काल के चन्द्रमा की भांति लाल और तनी हुई भौंहों के कारण विकराल हो उठा, तब उसे देखकर जो महिषासुर के प्राण नहीं निकल,

यह उससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात है; क्योंकि क्रोध पूरित यमराज को देख कर भला कौन जीवित रह सकता है ॥१३॥ देवि ! आप प्रसन्न हों, परमात्मस्वरूपा आपके प्रसन्न होने पर जगत् का अभ्युदय होता है और क्रोध में भर जाने पर आप तत्काल ही कितने कुलों का सर्वनाश कर डालती हैं, यह बात अभी अनुभव में आयी है; क्योंकि महिषासुर की यह विशाल सेना क्षण भर में आपके क्रोध से नष्ट हो गयी है ॥१४॥

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषा
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः ।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥१५॥

सदा अभ्युदय प्रदान करने वाली आप जिन पर प्रसन्न रहती हैं, वे ही देश में सम्मानित हैं, उन्हीं को धन और कीर्ति की प्राप्ति होती है, उन्हीं का धर्म कभी शिथिल नहीं होता तथा वे ही अपने स्वस्थ स्त्री, पुत्र और भृत्यों के साथ भाग्यवान् माने जाते हैं ॥१५॥ देवि ! आपकी ही कृपा से पुण्यात्मा पुरुष

धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा-
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥१६॥

प्रतिदिन अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सदा सब प्रकार के धर्मानुकूल कर्म करता है और उसके प्रभाव से स्वर्ग लोक में जाता है, इसलिए आप तीनों लोकों में निश्चय ही अभीष्ट फल देने वाली हैं ॥१६॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणी का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥१७॥

माँ दुर्गे! आप स्मरण करने पर सब प्राणियों का भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषों द्वारा चिन्तन करने पर उन्हें परम कल्याणकारक बुद्धि प्रदान

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥१८॥

करती हैं। दरिद्रता, दुःख, और भय हरने वाली देवि! आपके सिवा दूसरी कौन है, जिसका चित्त सबका उपकार करने के लिए सदा ही दयार्द्र रहता हो ॥१७॥ देवि! इन राक्षसों के मरने से संसार को सुख मिले तथा ये राक्षस चिरकाल तक नरक में रहने के लिए भले ही पाप करते रहे हों, इस समय संग्राम में मृत्यु को प्राप्त होकर स्वर्ग लोक में जाएं—निश्चय ही यही सोचकर आप शत्रुओं का वध करती हैं ॥१८॥

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम्।

लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥१९॥
खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥२०॥

आप शत्रुओं पर शस्त्रों का प्रहार क्यों करती हैं? समस्त शत्रुओं को दृष्टि-पात-मात्र से ही भस्मसात् क्यों नहीं कर देतीं? इसमें एक रहस्य है। ये शत्रु भी हमारे शस्त्रों से पवित्र होकर उत्तम लोकों में जाएं, इस प्रकार उनके प्रति भी आपका विचार अत्यन्त उत्तम रहता है ॥१९॥ खड्ग के तेजःपुंज की भयंकर दीप्ति से तथा आपके त्रिशूल के अग्रभाग की घनीभूत प्रभा से चौंधियाकर जो असुरों की आँखें फूट नहीं गयीं, उसमें कारण यही था कि वे मनोहर रश्मियों से युक्त चन्द्रमा के समान आनन्ददायक आपके इस सुन्दर मुख का दर्शन करते थे ॥२०॥

दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥२१॥

देवि! आपका शील दुराचारियों के बुरे बर्ताव को दूर करने वाला है। साथ ही यह रूप ऐसा है, जो कभी चिन्तन में भी नहीं आ सकता और जिसकी कभी दूसरों से तुलना भी नहीं हो सकती; तथा आपका बल और पराक्रम तो उन असुरों का भी नाश करने वाला है, जो कभी देवताओं के पराक्रम को भी नष्ट कर चुके थे। इस प्रकार आपने शत्रुओं पर भी अपनी दया ही प्रकट की है ॥२१॥ वरदायिनी देवि! आपके इस पराक्रम की किसके साथ तुलना हो सकती है तथा शत्रुओं को त्रस्त करने वाला एवं अत्यन्त मनोहर ऐसा रूप भी आपके सिवा और कहां है। हृदय में कृपा और युद्ध में निष्ठुरता—ये दोनों

केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥२२॥
त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त-
मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥२३॥

बातें तीनों लोकों के भीतर केवल आप में ही देखी गयी हैं ॥२२॥ हे माता! आप ने शत्रुओं का नाश करके त्रिलोकी की रक्षा की है। उन शत्रुओं को भी रण-स्थली में मारकर स्वर्गलोक में पहुँचाया है तथा उन्मत्त दैत्यों से प्राप्त होने वाले हम लोगों के भय को दूर कर दिया है। आपको हमारा नमस्कार है ॥२३॥

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥२४॥
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥२५॥
सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥२६॥

देवि! आप शूल से हमारी रक्षा करें। अम्बिके! खड्ग से हमारी रक्षा करें तथा घण्टा की ध्वनि और धनुष की टंकार से भी आप हम लोगों की रक्षा करें ॥२४॥ चण्डिके! पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा में आप हमारी रक्षा करें तथा हे ईश्वरि! अपने त्रिशूल को घुमा कर आप उत्तर दिशा में भी हमारी रक्षा करें॥२५॥ तीनों लोकों में आपके जो परम सुन्दर एवं अत्यन्त भयंकर रूप विचरते रहते हैं, उनके द्वारा भी आप हमारी तथा इस पृथ्वी की रक्षा करें ॥२६॥ अम्बिके! आपके कर-कमलों में शोभा पाने वाले खड्ग, शूल और गदा आदि

खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥२७॥

ऋषिरुवाच ॥२८॥

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥२९॥
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥३०॥

जो-जो अस्त्र हों, उन सबके द्वारा आप सब ओर से हम लोगों की रक्षा करें ॥२७॥

ऋषि बोले—॥२८॥ इस प्रकार देवताओं ने जगदम्बा दुर्गा की स्तुति की और नन्दन-वन के दिव्य पुष्पों एवं गन्ध-चंदन आदि के द्वारा उनका पूजन किया, फिर सबने मिलकर जब भक्तिपूर्वक दिव्य धूपों की सुगन्ध निवेदन की,

देव्युवाच ॥३१॥

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ॥३२॥

देवा ऊचुः ॥३३॥

भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते ॥३४॥
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः।
यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ॥३५॥

तब देवी ने प्रसन्नवदन होकर प्रणाम करते हुए सब देवताओं से कहा—॥२९-३०॥

देवी बोलीं—॥३१॥ देवताओ! तुम सब लोग मुझसे जिस बात की कामना करते हो, उसे मांगो ॥३२॥

देवता बोले—॥३३॥ भगवती ने हमारी सब इच्छाएँ पूर्ण कर दीं, अब कुछ भी बाकी नहीं है ॥३४॥ क्योंकि हमारा यह शत्रु महिषासुर मारा गया। महेश्वरि! इतने पर भी आप हमें और वर देना चाहती हैं ॥३५॥ तो

संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः।
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥३६॥
तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम्।
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥३७॥

जब-जब आपका स्मरण करें, तब-तब आप दर्शन देकर हम लोगों के महान् संकट निवारण कर दिया करें तथा प्रफुल्लवदन अम्बिके! जो मनुष्य इन स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करे, उसे धन-सम्पत्ति और ऐश्वर्य देने के साथ ही उसकी धन और स्त्री आदि सम्पत्ति को भी बढ़ाने के लिए आप सदा ही प्रसन्न रहें ॥३६-३७॥

ऋषिरुवाच ॥३८॥

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥३९॥

इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा।
देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥४०॥
पुनश्च गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथाभवत्।
वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ॥४१॥

ऋषि कहते हैं—॥३८॥ हे राजन्! देवताओं ने जब अपने तथा जगत् के कल्याण के लिए भद्रकाली देवी को इस प्रकार प्रसन्न किया, तब वे 'तथास्तु' कहकर वहीं अन्तर्धान हो गईं ॥३९॥ हे भूपाल! इस प्रकार पूर्वकाल में तीनों लोकों का हित चाहने वाली देवी जिस प्रकार देवताओं के शरीरों से प्रकट हुई थीं, वह सब कथा मैंने कह सुनायी ॥४०॥ अब पुनः देवताओं का उपकार करने वाली वे देवी असुरों तथा शुम्भ-निशुम्भ का वध करने एवं सब लोकों की रक्षा करने के लिए गौरी देवी के शरीर से जिस प्रकार प्रकट हुई थीं, वह सब कथा मेरे मुँह से सुनो। मैं उसका वर्णन तुमसे करता हूँ ॥४१-४२॥

रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामिते ॥ह्रीँ ॐ॥४२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
शक्रादिस्तुतिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
उवाच ५, अर्धश्लोकौ २, श्लोकाः ३५,
एवम् ४२, एवमादितः ॥२५९॥

पञ्चमोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ अस्य श्री उत्तरचरित्रस्य रुद्रऋषिः, महासरस्वती देवता, अनुष्टुप् छन्दः, भीमा शक्तिः, भ्रामरी बीजम्, सूर्यस्तत्त्वम्, सामवेदः स्वरूपम्, महासरस्वतीप्रीत्यर्थे उत्तरचरित्रपाठे विनियोगः।

ध्यानम्

ॐ घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥

'ॐ' क्लीं ऋषिरुवाच ॥१॥

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यासुराभ्यां शचीपतेः ।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात् ॥२॥
तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम् ।
कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च ॥३॥
तावेव पवनर्द्धिं च चक्रतुर्वह्निकर्म च ।
ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः ॥४॥

ऋषि कहते हैं—॥१॥ पूर्व काल में शुम्भ और निशुम्भ नामक असुरों ने अपने बल के घमण्ड में आकर शचीपति इन्द्र के हाथ से तीनों लोकों का राज्य और यज्ञ भाग छीन लिये ॥२॥ वे ही दोनों सर्य, चन्द्रमा, कुबेर, यम और वरुण के अधिकार का भी उपयोग करने लगे। वायु और अग्नि का कार्य भी वे ही करने लगे। उन दोनों ने सब देवताओं को तिरस्कृत, राज्यभ्रष्ट,

हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः ।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ॥५॥
तयास्माकं वरो दत्तो यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः ।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः ॥६॥
इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥७॥

पराजित तथा अधिकारहीन करके स्वर्ग से निकाल दिया। उन दोनों महान् असुरों से अपमानित देवताओं ने अपराजिता देवी का स्मरण किया और सोचा 'जगदम्बा' ने हम लोगों को वर दिया था कि "विपद् काल में स्मरण करने पर मैं तुम्हारी सब आपत्तियों का तत्काल नाश कर दूंगी" ॥३-६॥ यह विचार कर देवता गिरिराज हिमालय पर गये और वहां भगवती विष्णुमाया की स्तुति करने लगे ॥७॥

देवा ऊचुः ॥८॥

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥९॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥१०॥

देवता बोले—॥८॥ देवी को नमस्कार है, महादेवी शिवा को सर्वदा नमस्कार है। प्रकृति एवं भद्रा को प्रणाम है। हम लोग नियमपूर्वक जगदम्बा को नमस्कार करते हैं ॥९॥ रौद्रा को नमस्कार है। नित्या, गौरी एवं धात्री को बारम्बार हमारा नमस्कार है। ज्योत्स्नामयी, चन्द्ररूपिणी एवं सुखस्वरूपा देवी को बारम्बार प्रणाम है ॥१०॥ शरणागतों का कल्याण करने वाली वृद्धि एवं सिद्धिरूपा देवी को हम निरन्तर नमस्कार करते हैं। नैर्ऋती (राक्षसों की लक्ष्मी), राजाओं की लक्ष्मी तथा शर्वाणी (शिव-पत्नी) स्वरूपा आप

कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥११॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥१२॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥१३॥

जगदम्बा को बारम्बार नमस्कार है ॥११॥ दुर्गा, दुर्गपारा (दुर्गम संकट से पार उतारने वाली), सारा (सबकी सारभूता), सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रादेवी को सदैव नमस्कार है ॥१२॥ अत्यन्त सौम्य तथा अत्यन्त रौद्र-रूपा देवी को हम नमस्कार करते हैं, उन्हें हमारा बारम्बार नमस्कार है ॥१३॥

जो देवी सब प्राणियों में विष्णुमाया के नाम से कही जाती हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै।१४। नमस्तस्यै।१५। नमस्तस्यै नमो नमः ॥१६॥
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै।१७। नमस्तस्यै।१८। नमस्तस्यै नमो नमः ॥१९॥
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै।२०। नमस्तस्यै।२१। नमस्तस्यै नमो नमः ॥२२॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै।२३। नमस्तस्यै।२४। नमस्तयै नमो नमः ॥२५॥

॥१४-१६॥ जो देवी सब प्राणियों में चेतना कहलाती हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥१७-१९॥ जो देवी सब प्राणियों में बुद्धिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको हमारा बारम्बार नमस्कार है ॥२०-२२॥ जो देवी सब प्राणियों में

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नतस्तस्यै।२६। नमस्तस्यै।२७। नमस्तस्यै नमो समः ॥२८॥
या देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै।२९। नमस्तस्यै।३०। नमस्तस्यै नमो नमः ॥३१॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै।३२। नमस्तस्यै।३३। नमस्तस्यै नमो नमः ॥३४॥

निन्द्रा रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको हमारा बारम्बार नमस्कार है ॥२३-२५॥

जो देवी सब प्राणियों में क्षुधारूप से विद्यमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥२६-२८॥ जो देवी सब प्राणियों में छायारूप से विद्यमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥२९-३१॥ जो देवी सब प्राणियों में शक्ति रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥३२-३४॥

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ।३५। नमस्तस्यै ।३६। नमस्तस्यै नमो नमः ॥३७॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ।३८। नमस्तस्यै ।३९। नमस्तस्यै नमो नमः ॥४०॥
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ।४१। नमस्तस्यै ।४२। नमस्तस्यै नमो नमः ॥४३॥

जो देवी सब प्राणियों में तृष्णा रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥३५-३७॥

जो देवी सब प्राणियों में क्षमारूप से विद्यमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥३८-४०॥ जो देवी सब प्राणियों में जाति रूप से विद्यमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥४१-४३॥ जो देवी सब प्राणियों में लज्जा रूप से विद्यमान हैं उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार

या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ।४४। नमस्तस्यै ।४५। नमस्तस्यै नमो नमः ॥४६॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ।४७। नमस्तस्यै ।४८। नमस्तस्यै नमो नमः ॥४९॥
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ।५०। नमस्तस्यै ।५१। नमस्तस्यै नमो नमः ॥५२॥
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ।५३। नमस्तस्यै ।५४। नमस्तस्यै नमो नमः ॥५५॥

है ॥४४-४६॥ जो देवी सब प्राणियों में शान्तिरूप से विद्यमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥४७-४९॥ जो देवी सब प्राणियों में श्रद्धारूप से विद्यमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥५०-५२॥ जो देवी सब प्राणियों में कान्तिरूप

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ।५६। नमस्तस्यै ।५७। नमस्तस्यै नमो नमः ॥५८॥
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ।५९। नमस्तस्यै ।६०। नमस्तस्यै नमो नमः ॥६१॥
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ।६२। नमस्तस्यै ।६३। नमस्तस्यै नमो नमः ॥६४॥

से विद्यमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥५३-५५॥

जो देवी सब प्राणियों में लक्ष्मी रूप से विद्यमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥५६-५८॥ जो देवी सब प्राणियों में वृत्तिरूप से विद्यमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥५९-६१॥ जो देवी सबप्राणियों में स्मृति रूप से विद्यमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥६२-६४॥

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ।६५। नमस्तस्यै ।६६। नमस्तस्यै नमो नमः ॥६७॥
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ।६८। नमस्तस्यै ।६९। नमस्तस्यै नमो नमः ॥७०॥
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ।७१। नमस्तस्यै ।७२। नमस्तस्यै नमो नमः ॥७३॥

जो देवी सब प्राणियों में दयारूप से विद्यमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥६५-६७॥ जो देवी सब प्राणियों में तुष्टिरूप से विद्यमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥६८-७०॥ जो देवी सब जीवों में मातारूप से विद्यमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥७१-७३॥ जो देवी सब जीवधारियों में भ्रान्तिरूप से स्थित हैं, उनको नम-

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ।७४। नमस्तस्यै ।७५। नमस्तस्यै नमो नमः ॥७६॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतनां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥७७॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै ।७८। नमस्तस्यै ।७९। नमस्तस्यै नमो नमः ॥८०॥

स्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥७४-७६॥ जो जीवों के इन्द्रियवर्ग की अधिष्ठात्री देवी एवं सब प्राणियों में सदा विद्यमान रहने वाली हैं, उन व्याप्तिदेवी को बारम्बार नमस्कार है ॥७७॥ जो देवी चैतन्यरूप से इस सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥७८-८०॥

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया-
त्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥८१॥
या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥८२॥

पूर्वकाल में अपने अभीष्ट की प्राप्ति होने से देवताओं ने जिनकी स्तुति की तथा इन्द्र ने बहुत दिनों तक जिनकी सेवा की, वह कल्याण की साधनभूता ईश्वरी हमारा कल्याण और शुभ करें तथा सारी आपत्तियों का नाश कर डालें ॥८१॥ उद्दण्ड दैत्यों से पीड़ित हम सभी देवता जिन परमेश्वरी को इस

ऋषिरुवाच ॥८३॥

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ॥८४॥
साब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ॥८५॥
स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः।
देवैः समेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ॥८६॥

समय नमस्कार करते हैं तथा जो भक्ति से विनम्र पुरुषों द्वारा स्मरण की जाने पर तत्काल ही सम्पूर्ण विपत्तियों का नाश कर देती हैं, वे जगन्माता हमारा संकट दूर करें ॥८२॥

ऋषि बोले—॥८३॥ राजन्! इस प्रकार जब देवता स्तुति कर रहे थे, उस समय पार्वती देवी गंगाजी के जल में स्नान करने के लिए वहाँ आयीं ॥८४॥ उन सुन्दर भौंहों वाली भगवती ने देवताओं से पूछा—'आप लोग

शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥८७॥
तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥८८॥
ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम्।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ॥८९॥

यहाँ किसकी स्तुति कर रहे हैं?' तब उन्हीं के शरीर-कोश से प्रकट हुई शिवा देवी बोलीं—॥८५॥ 'शुम्भ दैत्य से अपमानित और युद्ध में निशुम्भ से पराजित हो यहां एकत्र हुए ये समस्त देवता मेरी ही स्तुति कर रहे हैं' ॥८६॥ पार्वतीजी के शरीर कोश से अम्बिका का प्रादुर्भाव हुआ था, इसलिए वे समस्त लोकों में 'कौशिकी' कही जाती हैं ॥८७॥ कौशिकी के प्रकट होने के बाद पार्वती का शरीर काले रंग का हो गया, अतः वे हिमालय पर रहने वाली कालिका देवी के नाम से प्रसिद्ध हुईं ॥८८॥ तदनन्तर शुम्भ-निशुम्भ के भृत्य चण्ड-मुण्ड वहां

ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥९०॥
नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम्।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ॥९१॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति ॥९२॥

उपस्थित हुए और उन्होंने मनोहर रूप धारण करने वाली अंबिका देवी को देखा ॥८९॥ फिर वे शुम्भ के पास जाकर बोले—"महाराज! एक अत्यन्त मनोहर स्त्री है, जो अपनी दिव्य कान्ति से हिमालय को आलोकित कर रही है ॥९०॥ वैसा उत्तम रूप कहीं किसी ने भी नहीं देखा होगा। दैत्यराज! पता लगाइये, वह देवी कौन है और उसे पकड़ लीजिए ॥९१॥ स्त्रियों में तो वह रत्न है, उसका प्रत्येक अंग बहुत ही सुन्दर है तथा वह अपने श्रीअंगों की कांति से सम्पूर्ण दिशाओं में प्रकाश फैला रही है। असुरेश्वर! अभी वह हिमालय

यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो।
त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ॥९३॥
ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात्।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥९४॥
विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ॥९५॥

पर ही विद्यमान है, आप उसे देख सकते हैं ॥९२॥ प्रभो! तीनों लोकों में मणि, हाथी और घोड़े आदि जितने भी रत्न हैं, वे सब इस समय आपके घर में शोभा पाते हैं ॥९३॥ हाथियों में रत्नभूत ऐरावत, पारिजात का वृक्ष और उच्चैःश्रवा घोड़ा—ये सब आपने इन्द्र से ले लिए हैं ॥९४॥ हंसों से जुता हुआ यह विमान आपके आँगन में शोभा पाता है। रत्नभूत अद्भुत विमान जो पहले ब्रह्मा जी के पास था, अब आपके यहां लाया गया है ॥९५॥ यह महापद्म नामक निधि आप कुबेर से छीन लाये हैं। समुद्र ने आपको केशरों से सुशोभित किंजल्किनी

निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात् ।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ॥९६॥
छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति ।
तथायं स्यन्दनवरो यः पुराऽऽसीत्प्रजापतेः ॥९७॥
मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता ।
पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥९८॥

नामक माला भेंट की है जिसके कमल कभी कुम्हलाते नहीं ॥९६॥ सुवर्ण की वर्षा करने वाला वरुण का छत्र भी आपके घर में शोभा पाता है तथा यह श्रेष्ठ रथ, जो पहले प्रजापति के अधिकार में था, अब आपके पास मौजूद है ॥९७॥ दैत्येश्वर ! मृत्यु की उत्क्रांतिदा नाम वाली शक्ति भी आपने छीन ली है तथा वरुण का पाश और समुद्र में होने वाले सब प्रकार के रत्न आपके भाई निशुम्भ के अधिकार में हैं। अग्नि ने भी स्वतः शुद्ध किये दो वस्त्र आपकी सेवा में भेंट किये हैं ॥९८-९९॥ दैत्यराज ! इस प्रकार सभी रत्न आपने एकत्र कर लिए हैं,

निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः ।
वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥ ९९ ॥
एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते ।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ॥१००॥

ऋषिरुवाच ॥१०१॥

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः ।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम् ॥१०२॥
इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम ।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ॥१०३॥

फिर जो यह स्त्रियों में रत्नरूप कल्याणमयी देवी है, इसे क्यों नहीं अपने अधिकार में कर लेते" ? ॥१००॥

ऋषि बोले—॥१०१॥ चण्ड-मुण्ड का यह वचन सुनकर शुम्भ ने महादैत्य सुग्रीव को दूत बना कर भेजा और कहा—"तुम मेरी

स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने।
सा देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥१०४॥

दूत उवाच ॥१०५॥

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥१०६॥

आज्ञा से उससे ये-ये बातें जाकर कहो और ऐसा उपाय करो जिससे प्रसन्न होकर वह शीघ्र ही यहां आ जाए" ॥१०२-१०३॥ वह दूत पर्वत के अत्यन्त रमणीक प्रदेश में, जहां देवी स्थित थीं, गया और मधुर वाणी में कोमल वचन बोला ॥१०४॥

दूत बोला—॥१०५॥ "देवि! दैत्यराज शुम्भ इस समय त्रिलोकाधिपति हैं। मैं उन्हीं का भेजा हुआ दूत हूं और यहां तुम्हारे पास आया हूं ॥१०६॥ उनकी आज्ञा सदा सब देवता एक स्वर से मानते हैं। कोई उसका उल्लंघन नहीं कर सकता। वे संपर्ण देवताओं को पराजित कर चुके हैं। उन्हों-

अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु।
निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह श्रृणुष्व तत् ॥१०७॥
मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः।
यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ॥१०८॥
त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः।
तथैव गजरत्नं च हृत्वा देवेन्द्रवाहनम् ॥१०९॥

ने तुम्हारे लिए जो संदेश दिया है, उसे सुनो ॥१०७॥ उन्होंने कहा है कि तीनों लोक मेरे अधीन हैं। संपूर्ण यज्ञों के भागों को मैं ही पृथक्-पृथक् भोगता हूं ॥१०८॥ तीनों लोकों में जितने श्रेष्ठरत्न हैं, वे सब मेरे अधिकार में हैं। देवराज इन्द्र का वाहन ऐरावत, जो हाथियों में रत्न के समान है, मैंने छीन लिया है ॥१०९॥ क्षीरसागर को मथने से जो अश्वरत्न उच्चैःश्रवा प्रकट हुआ था,

क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः ।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ॥११०॥
यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च ।
रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥१११॥
स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम् ।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥११२॥

उसे देवताओं ने मेरे पैरों पर नत होकर समर्पित किया है ॥११०॥ सुन्दरी ! उनके सिवा और भी जितने रत्नभूत पदार्थ देवताओं, गन्धर्वों और नागों के पास थे, वे सब मेरे ही पास आ चुके हैं ॥१११॥ देवि ! हम लोग तुम्हें संसार की स्त्रियों में रत्न मानते हैं, अतः तुम हमारे पास आ जाओ, क्योंकि रत्नों का उपभोग करने वाले हम ही हैं ॥११२॥ चञ्चल कटाक्षों वाली सुन्दरी ! तुम मेरी या मेरे भाई महापराक्रमी निशुम्भ की सेवा में आ जाओ; क्योंकि तुम रत्न-

मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम् ।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः ॥११३॥
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् ।
एतद् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥११४॥

ऋषिरुवाच ॥११५॥

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥११६॥

स्वरूपा हो ॥११३॥ मेरा वरण करने से तुम्हें अतुलनीय महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी। अपनी बुद्धि से यह विचार कर तुम मेरी पत्नी बन जाओ' ॥११४॥

ऋषि बोले—॥११५॥ दूत के यों कहने पर कल्याणस्वरूपा भगवती दुर्गा देवी, जो सकल जगत् को धारण करती हैं, मन-ही-मन गंभीरभाव से मुस्कराई और बोलीं ॥११६॥

देव्युवाच ॥११७॥

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किंचित्त्वयोदितम्।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ॥११८॥
किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम्।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥११९॥
यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ॥१२०॥

देवी ने कहा—॥११७॥ दूत ! तुम सत्य कहते हो, इसमें लेशमात्र भी झूठ नहीं कि शुम्भ तीनों लोकों का स्वामी है और निशुम्भ भी उसी के समान बली है ॥११८॥ किन्तु इस विषय में मैंने जो प्रतिज्ञा कर ली है, उसे कैसे मिथ्या करूं। मैंने अपनी स्वल्प बुद्धि के कारण पहले से जो प्रतिज्ञा कर रखी है, उसे सुनो ॥११९॥ "जो मुझे संग्राम में जीत लेगा, जो मेरे मद को चूर्ण कर देगा तथा संसार में जो मेरे समान बली होगा, वही मेरा वरण

तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः।
मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ॥१२१॥

दूत उवाच ॥१२२॥

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः ॥१२३॥
अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ॥१२४॥

करेगा" ॥१२०॥ इसलिए शुम्भ अथवा महादैत्य निशुम्भ स्वयं ही यहाँ पधारें और मुझे जीतकर शीघ्र मेरा हस्त ग्रहण कर लें, इसमें विलम्ब की क्या आवश्यकता है ॥१२१॥

दूत बोला—॥१२२॥ देवि ! तुम घमण्ड में भरी हो, मेरे सामने ऐसी बातें न करो। त्रिलोकी में कौन ऐसा पुरुष है जो शुम्भ-निशुम्भ का सामना कर सके ॥१२३॥ देवि ! अन्य दैत्यों के सामने भी सारे देवता

इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे।
शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ॥१२५॥
सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः।
केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ॥१२६॥

देव्युवाच ॥१२७॥

एवमेतद् बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान्।
किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ॥१२८॥

युद्ध में नहीं ठहर सकते, फिर तुम अकेली स्त्री होकर कैसे ठहर सकती हो ॥१२४॥ जिन शुम्भ आदि दैत्यों के सामने इन्द्र आदि देवता भी युद्ध में खड़े नहीं हुए, उनके सामने तुम स्त्री होकर कैसे जाओगी ॥१२५॥ इसलिए तुम मेरे ही कहने से शुम्भ-निशुम्भ के पास चली चलो। ऐसा करने से तुम्हारे गौरव की रक्षा होगी, अन्यथा जब वे केशों से पकड़ कर घसीटेंगे,

स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत् ॥ॐ॥१२९॥

तब तुम्हें अपनी प्रतिष्ठा खोकर जाना पड़ेगा ॥१२६॥

देवी ने कहा—॥१२७॥ तुम्हारा कहना ठीक है, शुम्भ बलवान है और निशुम्भ भी बड़ा पराक्रमी है; किन्तु क्या करूं! मैंने पहले बिना सोचे-समझे प्रतिज्ञा जो कर ली है ॥१२८॥ अतः अब तुम जाओ। मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह सब असुरराज से आदर पूर्वक कहना, फिर उन्हें जो उचित जान पड़े, करें ॥१२९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्या दूतसंवादो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

उवाच ९, त्रिपान्मन्त्राः ६६, श्लोकाः ५४,
एवम् १२९, एवमादितः ३८८॥

षष्ठोऽध्यायः

ध्यानम्

'ॐ' नागाधीश्वरविष्टरां फणिफणोत्तंसोरुरत्नावली-
भास्वद्देहलतां दिवाकरनिभां नेत्रत्रयोद्भासिताम्।
मालाकुम्भकपालनीरजकरां चन्द्रार्धचूडां परां
सर्वज्ञेश्वरभैरवाङ्कनिलयां पद्मावतीं चिन्तये॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥१॥

इत्याकर्ण्य वचो देव्या स दूतोऽमर्षपूरितः।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ॥२॥

ऋषि बोले—॥१॥ देवी का कथन सुनकर दूत को बड़ा क्रोध आया। उसने दैत्यराज के पास आकर सब ससाचार विस्तार पूर्वक कह सुनाया ॥२॥ दूत के उस वचन को सुनकर दैत्यराज कुपित हो उठा और असुर-

तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः।
सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् ॥३॥
हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः।
तामानय बलाद् दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ॥४॥
तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः।
स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा ॥५॥

सेनापति धूम्रलोचन से बोला—॥३॥ "धूम्रलोचन! तुम शीघ्र अपनी सेना साथ लेकर जाओ और उस दुष्टा को केश पकड़कर घसीटते हुए जबरदस्ती यहां ले आओ ॥४॥ उसकी रक्षा करने के लिए यदि कोई दूसरा खड़ा हो तो वह देवता, यक्ष अथवा गन्धर्व कोई भी क्यों न हो, उसे अवश्य मार डालना" ॥५॥

ऋषि बोले—॥६॥ शुम्भ के इस प्रकार आज्ञा देने पर धूम्रलोचन दैत्य ने साठ हजार असुरों की सेना लेकर वहां से तुरन्त प्रस्थान किया ॥७॥ वहां

ऋषिरुवाच ॥६॥

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः ।
वृतः षष्टया सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ॥७॥
स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् ।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ॥८॥
न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यति ।
ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ॥९॥

पहुँच कर उसने हिमालय पर रहने वाली देवी को देखा और ललकार कर कहा—"अरी ! तू शुम्भ-निशुम्भ के पास चल। यदि इस समय प्रसन्नतापूर्वक मेरे स्वामी के पास नहीं चलेगी तो मैं बलपूर्वक चोटी पकड़कर घसीटते हुए तुझे ले चलूँगा" ॥८-९॥

देवी बोलीं—॥१०॥ तुम्हें दैत्यों के राजा ने भेजा है, तुम स्वयं भी बलवान हो और तुम्हारे पास विशाल सेना भी है, ऐसी दशा में यदि मुझे

देव्युवाच ॥१०॥

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः ।
बलान्नयसि मामेव ततः किं ते करोम्यहम् ॥११॥

ऋषिरुवाच ॥१२॥

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः ।
हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः ॥१३॥
अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥१४॥

बलपूर्वक ले चलोगे तो मैं तुम्हारा क्या कर सकती हूँ ॥११॥

ऋषि बोले—॥१२॥ देवी के यों कहने पर दैत्य धूम्रलोचन उनकी ओर दौड़ा, तब अंबिका ने 'हुं' शब्द के उच्चारण मात्र से उसको भस्म कर दिया ॥१३॥ फिर तो क्रोध में विह्वल दैत्यों की विशाल सेना और अंबिका ने एक दूसरे पर तीखे बाणों, शक्तियों तथा फरसों की वर्षा आरम्भ की ॥१४॥

ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम्।
पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः ॥१५॥
कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान्।
आक्रम्य चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान् ॥१६॥
केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी।
तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ॥१७॥

इतने में ही देवी का वाहन सिंह कोध में भरकर गर्जना करके गर्दन के बालों को हिलाता हुआ, असुरों की सेना में कूद पड़ा ॥१५॥ उसने कुछ दैत्यों को नखों की मार से, कितनों को अपने जबड़ों की और कितने ही महादैत्यों को पटक कर दाढ़ों से फाड़ करके मार डाला ॥१६॥ उस सिंह ने अपने नखों से कितनों के पेट फाड़ डाले और थप्पड़ मार कर कितनों के सिर धड़ से पृथक् कर दिये ॥१७॥ कितनों की भुजाएं और मस्तक काट डाले तथा अपनी गर्दन

विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ॥१८॥
क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना।
तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥१९॥
श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम्।
बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः ॥२०॥
चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः।

के बाल हिलाते हुए उसने दूसरे दैत्यों के पेट फाड़कर उनका रक्त चूस लिया ॥१८॥ अत्यन्त क्रोध में भरे हुए देवी के वाहन उस महाबली सिंह ने क्षण भर में ही असुरों की सेना का संहार कर डाला ॥१९॥ शुम्भ ने जब यह सुना कि देवी ने धूम्रलोचन असुर को मार डाला तथा उसके सिंह ने सारी सेना का सफाया कर डाला, तब वह दैत्यराज बड़ा कुपित हुआ। उस

आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥२१॥
हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ।
तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥२२॥
केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि।
तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥२३॥

के होंठ कांपने लगे। उसने चण्ड और मुण्ड नामक दो महादैत्यों को आज्ञा दी कि ॥२०-२१॥ "हे चण्ड! और हे मुण्ड! तुम लोग बहुत बड़ी सेना लेकर वहां जाओ और उस देवी को झोंटे से पकड़ कर अथवा उसे बांध कर शीघ्र यहां ले आओ। यदि इस प्रकार उसको लाने में तुम्हें सन्देह हो तो युद्ध में सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों तथा समस्त आसुरी सेना का प्रयोग करके उसका वध कर डालना ॥२२-२३॥ उस दुष्टा की हत्या होने तथा सिंह के साथ मारे

तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते।
शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ॥ॐ॥२४॥

जाने पर उस मरी हुई अंबिका को बांध कर साथ ले शीघ्र ही लौट आना" ॥२४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भ निशुम्भसेनानी-धूम्रलोचनवधो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

उवाच ४, श्लोकाः २०, एवम् २४, एवमादितः ॥४१२॥

सप्तमोऽध्यायः

ध्यानम्

'ॐ' ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं
शृण्वतीं श्यामलाङ्गीं
न्यस्तैकाङ्घ्रि सरोजे शशिशकलधरां
वल्लकीं वादयन्तीम् ।
कह्लाराबद्धमालां नियमितविलसच्चोलिकां रक्तवस्त्रां
मातङ्गीं शङ्खपात्रां मधुरमधुमदां चित्रकोद्भासिभालाम् ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥१॥

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः ।
चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥२॥

ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम् ।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने ॥३॥
ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः ।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥४॥

ऋषि बोले—॥१॥ इसके पश्चात् शुम्भ की आज्ञा पाकर वे चण्ड-मुण्ड आदि दैत्य चतुरंगिणी सेना के साथ अस्त्र-शस्त्रों से लैस हो चल दिये ॥२॥ फिर गिरिराज हिमालय के सुवर्णमय ऊंचे शिखर पर पहुंच कर उन्होंने सिंह पर विराजमान देवी को देखा। वे मन्द-मन्द मुस्करा रही थीं ॥३॥ उन्हें देखकर दैत्य लोग तत्परता से पकड़ने का उद्योग करने लगे। किसी ने धनुष ताना, किसी ने तलवार संभाली और कुछ लोग देवी के पास आकर खड़े हो गये ॥४॥ तब अंबिका को उन शत्रुओं पर बड़ा क्रोध आया। उस समय क्रोध के कारण उनका मुख काला पड़ गया ॥५॥ ललाट में भौंहें वक्र हो गयीं। तब

ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति ।
कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा ॥५॥
भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम् ।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ॥६॥
विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा ।
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥७॥

वहां से विकराल-मुखी काली प्रकट हुईं, जो तलवार और पाश लिए हुए थीं ॥६॥ वे विचित्र खट्वांग धारण किये और चीते के चमड़े की साड़ी पहने, नर-मुण्डों की माला से अलंकृत थीं। उनके शरीर का मांस सूख गया था, केवल-मात्र अस्थिपंजर शेष था जिससे वे अत्यन्त भयंकर जान पड़ती थीं ॥७॥ उनका मुख विशाल था। जीभ लपलपाने के कारण वे और भी डरावनी प्रतीत होती थीं, उनकी आंखें भीतर को धंसी हुई और अंगारों के समान लाल थीं, वे

अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा ।
निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥८॥
सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान् ।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत् तद्बलम् ॥९॥
पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान् ।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ॥१०॥

अपनी भयंकर गर्जना से सम्पूर्ण दिशाओं को गुंजा रही थीं ॥८॥ बड़े-बड़े दैत्यों का वध करती हुई वे कालिका देवी बड़े वेग से दैत्यों की उस सेना पर टूट पड़ीं और उनका भक्षण करने लगीं ॥९॥ वे पार्श्वरक्षकों, अंकुशधारी महावतों और योद्धाओं तथा घण्टा सहित कितने ही हाथियों को एक ही हाथ से पकड़कर मुख में डाल लेती थीं ॥१०॥ किसी को बालों से पकड़ लेतीं, किसी का गला दबोच देतीं, किसी को पैरों से कुचल डालतीं और किसी को छाती के धक्के से गिरा-

तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ॥११॥
एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम्।
पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥१२॥
तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः।
मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि ॥१३॥
बलिनां तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम्।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ॥१४॥

कर मार डालती थीं ॥११-१२॥ वे असुरों के फेंके हुए बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र मुँह से पकड़ लेतीं और रोष में भर कर उनको दांतों से चकनाचूर कर डालतीं ॥१३॥ काली ने बलवान् एवं दुरात्मा दैत्यों की वह सारी सेना खतम कर डाली, खा डाली और कितनों को मार भगाया ॥१४॥ कोई तलवार के घाट उतारे

असिना निहताः केचित्केचित्खट्वाङ्गताडिताः।
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा ॥१५॥
क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम्।
दृष्टवा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ॥१६॥
शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः।
छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः ॥१७॥
तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम्।

गये, कोई खट्वांग से पीटे गये और कितने ही असुर दांतों के अग्र-भाग से कुचले जाकर मृत्यु को प्राप्त हुए ॥१५॥ इस प्रकार देवी ने असुरों की उस समस्त सेना को क्षण भर में धराशायी कर दिया। यह देख चण्ड उन अत्यन्त भयानक काली देवी की ओर दौड़ा ॥१६॥ तथा महादैत्य मुण्ड ने भी अत्यन्त भयंकर बाणों की बौछार से तथा हजारों बार चलाये हुए चक्रों से उन भयानक नेत्रों वाली देवी को आवृत कर दिया ॥१७॥ वे अनेकों चक्र देवी के मुख

बभूर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ॥१८॥
ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी।
काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥१९॥
उत्थाय च महासिं हं देवी चण्डमधावत।
गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥२०॥

में समाते हुए ऐसे जान पड़े, मानो सूर्य के बहुतेरे मण्डल बादलों के उदर में प्रवेश कर रहे हों ॥१८॥ तब भयंकर गर्जना करने वाली काली ने अत्यन्त रोष में भरकर विकट अट्टहास किया। उस समय उनके विकराल मुख के भीतर कठिनता से देखे जा सकने वाले दांतों की प्रभा से वे अत्यन्त उज्ज्वल दिखाई देती थीं ॥१९॥ देवी ने बहुत बड़ी तलवार हाथ में ले 'हं' का उच्चारण करके चण्ड पर हमला किया और उसके केश पकड़ कर उसी तलवार से उसका मस्तक धड़ से अलग कर दिया ॥२०॥

चण्ड को मारा गया देखकर मुंड भी देवी की ओर दौड़ा। तब देवी ने रोष

अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा ॥२१॥
हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम् ॥२२॥
शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च।
प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ॥२३॥
मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू।
युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ॥२४॥

में भरकर उसे भी तलवार से घायल करके धरती पर सुला दिया ॥२१॥ महापराक्रमी चंड और मुंड को मारा गया देख मरने से बची हुई बाकी सेना आतंकित हो चारों ओर भाग गयी ॥२२॥ तत्पश्चात् काली ने चंड और मुंड के मस्तक हाथ में ले चंडिका के पास जाकर प्रचंड अट्टहास करते हुए कहा—

ऋषिरुवाच ॥२५॥

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ।
उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ॥२६॥
यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि ॥ॐ॥२७॥

॥२३॥ देवि! मैं चंड और मुंड नामक इन दो महान् असुरों को भेंट करने के लिए लाई हूँ। अब युद्ध-यज्ञ में तुम शुम्भ और निशुम्भ का स्वयं ही वध करना ॥२४॥

ऋषि बोले—॥२५॥ वहाँ लाये हुए उन चंड-मुंड नामक महादैत्यों को देखकर कल्याणमयी चंडी ने काली से मधुर वाणी में कहा ॥२६॥ देवि! तुम चंड और मुंड को लेकर मेरे पास आयी हो, इसलिए संसार में चामुंडा के नाम से विख्यात होवोगी ॥२७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
चण्डमुण्डवधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥
उवाच २, श्लोकाः २५, एवम् २७, एवमादितः ४३६॥

अष्टमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐअरुणां करुणातरङ्गिताक्षीं धृतपाशाङ्कुशबाणचापहस्ताम्।
अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव विभावये भवानीम् ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥१॥

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥२॥
ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान्।
उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥३॥

ऋषि बोले—॥१॥ चंड और मुण्ड नामक दैत्यों के मारे जाने तथा बहुत-सी सेना के विनष्ट हो जाने पर दैत्यों के राजा शुम्भ के मन में बहुत क्रोध पैदा हुआ और उसने दैत्यों की सम्पूर्ण सेना को युद्ध के लिए प्रस्थान करने का

अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः ।
कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स्वबलैर्वृताः ॥४॥
कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै ।
शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥५॥
कालका दौर्हृदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः ।
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥६॥

आदेश दिया ॥२-३॥ वह बोला—आज उदायुध नाम के छियासी दैत्य सेनापति अपनी सेनाओं के साथ युद्ध के लिए कूच करें और कम्बु नाम वाले दैत्यों के चौरासी सेनानायक अपनी-अपनी सेनाओं से घिरे हुए यात्रा करें ॥४॥ पचास कोटिवीर्य-कुल के और सौ धौम्र-कुल के असुर सेनापति मेरी आज्ञा से सेना सहित प्रस्थान करें ॥५॥ कालक, दौर्हृद, मौर्य और कालकेय असुर भी लड़ाई के लिए तैयार हो मेरी आज्ञा से तुरन्त प्रस्थान करें ॥६॥

इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः ।
निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥७॥
आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम् ।
ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ॥८॥
ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप ।
घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका चोपबृंहयत् ॥९॥

भयानक शासन करने वाला असुरराज शुम्भ इस प्रकार आज्ञा दे सहस्रों बड़ी-बड़ी सेनाओं के साथ युद्ध के लिए प्रस्तुत हुआ ॥७॥ उसकी अत्यन्त भयंकर सेना को आती देख चंडिका ने अपने धनुष की टंकार से पृथ्वी और आकाश के बीच का भाग गुँजा दिया ॥८॥ राजन् ! तदनन्तर देवी के सिंह ने बड़े जोर से दहाड़ना आरम्भ किया । फिर अंबिका ने घंटे की आवाज से उस निनाद को और भी अधिक बढ़ा दिया ॥९॥ धनुष की टंकार, सिंह की दहाड़ और घंटे की ध्वनि से सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं । उसी भयंकर शब्द से काली ने

धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा ।
निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारिताननां ॥१०॥
तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ।
देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः ॥११॥
एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम् ।
भवायामरसिंहाननमतिवीर्यबलान्विताः ॥१२॥

अपने विकराल मुख को और भी बढ़ा लिया तथा इस प्रकार वे विजयिनी हुईं ॥१०॥ उस तुमुल घोष को सुनकर दैत्यों की सेनाओं ने चारों ओर से आकर चंडिका देवी, सिंह तथा काली देवी को क्रोधपूर्वक घेर लिया ॥११॥ राजन् ! इसी बीच में असुरों के विनाश तथा देवताओं के अभ्युदय के लिए ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, विष्णु तथा इन्द्र आदि देवों की शक्तियाँ, जो अत्यन्त पराक्रम और बल से सम्पन्न थीं, उनके शरीरों से निकल कर उन्हीं के रूप में

ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः ।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः ॥१३॥
यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम् ।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ ॥१४॥
हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः ।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ॥१५॥

चंडिका देवी के पास गयीं ॥१२-१३॥ जिस देवता का जैसा रूप, जैसी वेश-भूषा और जैसी सवारी है, ठीक वैसे ही साधनों से सम्पन्न हो उस-उसकी शक्ति असुरों से युद्ध करने के लिए आयी ॥१४॥ सबसे पहले हंसयुक्त विमान पर बैठी हुई अक्षसूत्र और कमंडलु से शोभायमान ब्रह्माजी की शक्ति उपस्थित हुई, जिसे ब्रह्माणी कहते हैं ॥१५॥ महादेवजी की शक्ति वृषभ पर आरूढ़ हो, हाथों में श्रेष्ठ त्रिशूल धारण किये, महानाग का कंकण पहने,

माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी।
महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा ॥१६॥
कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी ॥१७॥
तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥१८॥

मस्तक में चन्द्ररेखा से विभूषित हो वहां पहुँची ॥१६॥ कार्तिकेयजी की शक्ति-रूपा जगदम्बिका उन्हीं का रूप धारण किये श्रेष्ठ मयूर पर विराजमान हो, हाथ में शक्ति लिए दैत्यों से युद्ध करने के लिए आयी ॥१७॥ इसी प्रकार भगवान् विष्णु की शक्ति गरुड़ पर आरूढ़ हो शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष तथा खड्ग धारण किये वहां आई॥१८॥ अनुपम यज्ञ-वाराह का रूप धारण करने वाले श्रीहरि की शक्ति भी वाराह-शरीर धारण करके वहां उपस्थित हुई

यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतो हरेः।
शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम् ॥१९॥
नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ॥२०॥
वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि स्थिता।
प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा ॥२१॥
ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याऽऽह चण्डिकाम् ॥२२॥

॥१९॥ नारसिंही शक्ति भी नृसिंह के सदृश शरीर धारण करके वहाँ आयी। उसकी गर्दन के बालों के झटके से आकाश के तारे बिखर पड़ते थे ॥२०॥ इसी प्रकार इन्द्र की शक्ति वज्र हाथ में साधे गजराज ऐरावत पर आसीन हो आयी। उसके भी सहस्र नेत्र थे। जैसा इन्द्र का रूप है, वैसा ही उसका भी था ॥२१॥ तदनन्तर उन देव-शक्तियों से घिरे हुए महादेवजी ने चंडिका से कहा—"मेरी

ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा ।
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ॥२३॥
सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता ।
दूत त्वं गच्छ भगवन् शुम्भनिशुम्भयोः ॥२४॥
ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ ।
ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः ॥२५॥

सन्तुष्टि के लिए तुम शीघ्र ही इन असुरों का विनाश करो" ॥२२॥ तब देवी के शरीर से अत्यन्त भयानक और परम उग्र चण्डिका शक्ति उत्पन्न हुई जो सैकड़ों गीदड़ियों की भाँति शब्द करने लगी ॥२३॥ उस अपराजिता देवी ने धूमिल जटा वाले महादेवजी से कहा—भगवन्! आप शुम्भ-निशुम्भ के पास दूत बन कर जाइये ॥२४॥ और उन अत्यन्त घमंडी दानव शुम्भ एवं निशुम्भ से कहिये। साथ ही उनके अतिरिक्त भी जो दानव युद्ध के लिये वहाँ उपस्थित हों, उनको भी यह संदेश जिये—॥२५॥ 'दैत्यो! यदि तुम जीवित रहना

त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः ।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥२६॥
बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धकाङ्क्षिणः ।
तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥२७॥
यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम् ।
शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता ॥२८॥

चाहते हो तो पाताल को वापस चले जाओ। इन्द्र को त्रैलोक्य का राज्य मिल जाए और देवता यज्ञ-भाग का भोग करें ॥२६॥ यदि अपने बल के घमंड से चूर तुम युद्ध करना चाहते हो तो आओ। मेरी योगिनियां तुम्हारे कच्चे माँस से तृप्त हों" ॥२७॥ क्योंकि उस देवी ने भगवान् शिव को दूत के कार्य में नियुक्त किया था, इसलिए वह 'शिवदूती' के नाम से संसार में विख्यात हुई ॥२८॥ भगवान् शिव के मुँह से देवी के वचन सुनकर वे महादैत्य भी क्रोध में भर

तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः।
अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता ॥२९॥
ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः।
ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः ॥३०॥
सा च तान् प्रहितान् बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान्।
चिच्छेद लीलयाऽऽध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥३१॥

गये और जहां कात्यायनी विराजमान थीं, उस ओर बढ़े ॥२९॥ इसके बाद वे दैत्य क्रोध में भरकर पहले ही देवी के ऊपर बाण, शक्ति और ऋष्टि आदि अनेकों अस्त्रों की वर्षा करने लगे ॥३०॥ तब देवी ने भी खेल-खेल में ही धनुष की टंकार की और उससे छोड़े हुए बड़े-बड़े बाणों द्वारा दैत्यों के चलाये हुए बाण, शक्ति और फरसों को काट डाला ॥३१॥ फिर काली उनके आगे होकर शत्रुओं को शूल के प्रहारों से विदीर्ण करने लगी और खट्वांग से उनका कचूमर

तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान्।
खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन् कुर्वंती व्यचरत्तदा ॥३२॥
कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान् हतौजसः।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति ॥३३॥
माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी।
दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥३४॥

निकालती हुई रणस्थली में विचरने लगी ॥३२॥ ब्रह्माणी भी जिस-जिस ओर जाती, उसी-उसी ओर अपने कमंडलु का जल छिड़क कर शत्रुओं के ओज और पराक्रम को नष्ट कर देती थी ॥३३॥ माहेश्वरी ने त्रिशूल से तथा वैष्णवी ने चक्र से और अत्यन्त क्रोध में विह्वल हुई कुमार कार्तिकेय की शक्ति ने दैत्यों का संहार आरम्भ किया ॥३४॥ इन्द्र शक्ति के प्रहार से आहत हो सैकड़ों दैत्य-

ऐन्द्री कुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः ।
पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥३५॥
तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः ।
वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ॥३६॥
नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान् ।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा ॥३७॥

दानव रुधिर धारा बहाते हुए धराशायी हो गये ॥३५॥ वाराही शक्ति ने कितनों को अपने थूथुन की मार से नष्ट किया, दाढ़ों के अग्रिम भाग से कितनों की छाती फाड़ डाली तथा कितने ही दैत्य चक्र की चोट से विदीर्ण हो गये ॥३६॥ नारसिंही भी दूसरे-दूसरे महादैत्यों को अपने नखों से विदीर्ण करके खाती और सिंहनाद से दिशाओं एवं आकाश को गुंजाती हुई युद्ध-क्षेत्र में अबाध विचरने लगी ॥३७॥ शिवदूती के प्रचण्ड अट्टहास से अत्यन्त भयभीत हो कितने ही असुर

चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः ।
पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ॥३८॥
इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान् ।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥३९॥
पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान् ।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ॥४०॥

पृथ्वी पर गिर पड़े। उन्हें शिवदूती ने उसी समय अपना ग्रास बना लिया ॥३८॥ इस प्रकार क्रोध में भरी मातृगणों को नाना प्रकार के उपायों से बड़े-बड़े असुरों का मर्दन करते देख दैत्य सैनिक भाग खड़े हुए ॥३९॥ मातृगणों से पीड़ित दैत्यों को युद्ध से भागते देख रक्तबीज नाम का महादैत्य कुपित हो युद्ध के लिये आगे बढ़ा ॥४०॥ उसके शरीर से जब रक्त की बूँद पृथ्वी पर गिरती, तब उसी के

रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः।
समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः ॥४१॥
युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः।
ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥४२॥
कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम्।
समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥४३॥

समान शक्तिशाली एक दूसरा महादैत्य पृथ्वी पर पैदा हो जाता ॥४१॥ महान् असुर रक्तबीज हाथ में गदा लेकर इन्द्रशक्ति के साथ युद्ध करने लगा। तब ऐन्द्री ने अपने वज्र से रक्तबीज को मारा ॥४२॥ वज्र से घायल होने पर उसके शरीर से रक्त बहने लगा और उससे उसी के समान रूप तथा बल वाले योद्धा उत्पन्न होने लगे ॥४३॥ उसके शरीर से खून की जितनी बूंदें गिरीं, उतने ही दैत्य उत्पन्न हो गये। वे सब रक्तबीज के समान ही वीर्यवान्, बलवान् तथा

यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥४४॥
ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः।
समं मातृभिरत्युग्रशस्त्रपातातिभीषणम् ॥४५॥
पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ॥४६॥
वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह।
गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥४७॥

पराक्रमी थे ॥४४॥ वे रक्त से उत्पन्न होने वाले दैत्य भी अत्यन्त भयंकर अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार करते हुए मातृगणों के साथ अत्यन्त घोर युद्ध करने लगे ॥४५॥ पुनः वज्र के प्रहार से जब उसका मस्तक घायल हुआ तो उससे रक्त बहने लगा, जिससे हजारों वैसे ही पुरुष उत्पन्न हो गये ॥४६॥ वैष्णवी ने दैत्य-

वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः ।
सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥४८॥
शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना ।
माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ॥४९॥
स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत् पृथक् ।
मातॄः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ॥५०॥

सेनापति को गदा से चोट पहुँचायी ॥४७॥ वैष्णवी के चक्र से घायल होने पर उसके शरीर से जो रक्त बहा उससे उसी के बराबर आकार वाले सहस्रों महादैत्य प्रकट हुए, उनके द्वारा सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया ॥४८॥ कौमारी ने शक्ति से, वाराही ने खड्ग से और माहेश्वरी ने त्रिशूल से महादैत्य रक्तबीज को घायल किया ॥४९॥ उस महादैत्य ने भी क्रोध में भर कर गदा से मातृ-शक्तियों पर पृथक्-पृथक् प्रहार किया ॥५०॥ शक्ति और शूल आदि से अनेक

तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि ।
पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः ॥५१॥
तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् ।
व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥५२॥
तान् विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा ।
उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु ॥५३॥

बार घायल होने पर जो उसके शरीर से रक्त की धारा पृथ्वी पर गिरी, उससे भी सैकड़ों असुर उत्पन्न हुए ॥५१॥ इस प्रकार उस महादैत्य के रक्त से प्रकट हुए असुरों द्वारा सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया। इससे देवता आतंकित हो उठे ॥५२॥ देवताओं को उदास देख चण्डिका ने काली से शीघ्रतापूर्वक कहा—"चामुण्डे ! तुम अपने मुख को और भी विस्तृत करो ॥५३॥ तथा मेरे शस्त्र-पात से गिरने वाले रक्तबिन्दुओं और उनसे उत्पन्न होने वाले महादैत्यों को तुम

मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान्।
रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना ॥५४॥
भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान्।
एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥५५॥
भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे।
इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् ॥५६॥

अपने इस उतावले मुख से खा जाओ ॥५४॥ इस प्रकार रक्त से उत्पन्न होने वाले महान् दैत्यों का भक्षण करती हुई तुम रण में विचरती रहो। ऐसा करने से उस दैत्य का सारा रक्त खत्म हो जाने पर वह स्वयं भी नष्ट हो जायेगा ॥५५॥ उन भयंकर दैत्यों को जब तुम खा जाओगी तो दूसरे नये दैत्य उत्पन्न नहीं हो सकेंगे।" यों कह कर चण्डिका देवी ने शूल से रक्तबीज को मारा ॥५६॥ और काली ने अपने मुख में उसका रक्त ग्रहण कर लिया। तब

मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम्।
ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् ॥५७॥
न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि।
तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् ॥५८॥
यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति।
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः ॥५९॥

उसने चण्डिका पर गदा का प्रहार किया ॥५७॥ किन्तु उस गदा-पात से देवी को तनिक भी वेदना नहीं हुई। रक्तबीज के घायल शरीर से बहुत-सा रक्त गिरा ॥५८॥ किन्तु ज्योंही रक्त गिरा त्योंही चामुण्डा ने उसे अपने मुख में ले लिया। रक्त गिरने से काली के मुख में जो महादैत्य उत्पन्न हुए, उन्हें भी यह चट कर गयी और उसने रक्तबीज का रक्त भी पी लिया ॥५९॥ तदनन्तर देवी ने रक्तबीज को, जिसका रक्त चामुण्डा ने पी लिया था, वज्र, बाण, खड्ग तथा

तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम् ।
देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ॥६०॥
जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम् ।
स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः ॥६१॥
नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः ।
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप ॥६२॥
तेषां मातृगणो जातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः ॥ॐ॥६३॥

ऋष्टि आदि से मार डाला ॥६०॥ राजन् ! इस प्रकार शस्त्रों के समुदाय से घायल एवं रक्तहीन हुआ महादैत्य रक्तबीज पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥६१॥ नरेश्वर ! इससे देवताओं को अत्यधिक हर्ष की प्राप्ति हुई ॥६२॥ और मातृगण उन असुरों के रक्तपान के मद से उद्धत होकर नाचने लगा ॥६३॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये रक्तबीजवधो नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

उवाच १, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः ६१, एवम् ६३, एवमादितः ५०२॥

नवमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां
पाशाङ्कुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः ।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्र-
मर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि ॥

'ॐ' राजोवाच ॥१॥

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम ।
देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ॥२॥

राजा ने कहा—॥१॥ भगवन् ! आपने मुझे रक्तबीज के वध से सम्बन्ध रखने वाला देवी-चरित्र का यह अद्भुत माहात्म्य बतलाया ॥२॥ अब रक्तबीज के मारे जाने के कारण अत्यन्त क्रोधित शुम्भ और निशुम्भ ने

भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते।
चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः ॥३॥

ऋषिरुवाच ॥४॥

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते।
शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ॥५॥
हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन्।
अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया ॥६॥

जो कर्म किया, उसको मैं सुनना चाहता हूं ॥३॥ ऋषि बोले—॥४॥ राजन्! संग्राम में रक्तबीज तथा अन्य दैत्यों के मारे जाने पर शुम्भ और निशुम्भ के क्रोध का पारावार नहीं रहा ॥५॥ अपनी विशाल सेना को इस प्रकार मारी जाती देख निशुम्भ क्रोध में भरकर देवी की ओर दौड़ा। उसके साथ असुरों की

तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः।
संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ॥७॥
आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः।
निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ॥८॥
ततो युद्धमतीवासीद् देव्या शुम्भनिशुम्भयोः।
शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ॥९॥

प्रधान सेना थी ॥६॥ उसके आगे-पीछे तथा पार्श्वभाग में बड़े-बड़े असुर थे, जो क्रोध से ओंठ चबाते हुए देवी को मार डालने के लिये आये ॥७॥ महाबली शुम्भ भी अपनी सेना के साथ मातृगणों से युद्ध करता हुआ क्रोधवश चण्डिका को मारने के लिए आ पहुँचा ॥८॥ तब देवी के साथ शुम्भ और निशुम्भ का संग्राम छिड़ गया। वे दोनों मेघों की भांति बाणों की भीषण वर्षा कर रहे थे ॥९॥ दोनों के चलाये हुए बाणों को चंडिका ने अपने बाणों से तुरन्त काट डाला और शस्त्रों

चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः ।
ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥१०॥
निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम् ।
अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥११॥
ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम् ॥१२॥

की वर्षा करके उन दैत्यपतियों के अंगों में भी चोट पहुँचायी ॥१०॥ निशुम्भ ने तीक्ष्ण तलवार और चमकती हुई ढाल लेकर देवी की श्रेष्ठ सवारी सिंह के माथे पर प्रहार किया ॥११॥ अपने वाहन को चोट पहुँचने पर देवी ने क्षुरप्र नामक बाण से निशुम्भ की उत्तम तलवार तुरन्त ही काट डाली और उसकी ढाल भी, जिसमें आठ चाँद जड़े थे, टुकड़े-टुकड़े कर दिया ॥१२॥ ढाल और तलवार के कट जाने पर उस असुर ने शक्ति चलायी, किन्तु सामने आने पर देवी ने

छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः ।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥१३॥
कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः ।
आयातं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥१४॥
आविध्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति ।
सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥१५॥

चक्र से उसके भी दो टुकड़े कर दिये ॥१३॥ अब तो निशुम्भ क्रोध से जल उठा और उस दानव ने देवी को मारने के लिए शूल चलाया; किन्तु देवी ने समीप आने पर उसे भी मुक्के से मार कर चूर्ण कर दिया ॥१४॥ तब उसने गदा घुमाकर चंडी के ऊपर प्रहार किया, परन्तु वह भी देवी के त्रिशूल से कट कर भस्म हो गयी ॥१५॥ तदनन्तर दैत्यराज निशुम्भ को फरसा हाथ में लेकर अपनी ओर आते देख देवी ने बाणों से आहत कर उसे धरती पर सुला

ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुंगवम् ।
आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले ॥१६॥
तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे ।
भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥१७॥
स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः ।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ॥१८॥
तमायान्तं समालोक्य देवी शंखमवादयत् ।
ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ॥१९॥

दिया ॥१६॥ उस भयंकर पराक्रमी भाई निशुम्भ के धराशायी हो जाने से शुम्भ क्रोधित हुआ और अंबिका का वध करने के लिए आगे बढ़ा ॥१७॥ रथ पर बैठे-बैठे ही उत्तम अस्त्रों से शोभायमान, अपनी बड़ी-बड़ी आठ अनुपम भुजाओं से समूचे आकाश को ढककर वह अद्भुत शोभा पाने लगा ॥१८॥ उसे आते

पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च ।
समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥२०॥
ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः ।
पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश ॥२१॥
ततः कालीं समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत् ।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ॥२२॥

देख देवी ने शंख बजाया और धनुष की डोरी का अत्यन्त दुस्सह शब्द किया ॥१९॥ साथ ही अपने घंटे के शब्द से, जो समस्त सैनिकों का तेज नष्ट करने वाला था, सम्पूर्ण दिशाओं को गुंजा दिया ॥२०॥ इसके बाद सिंह ने भी अपनी दहाड़ से जिसे सुनकर बड़े-बड़े गजराजों का महान् मद दूर हो जाता था आकाश, पृथ्वी और दशों दिशाओं को गुँजा दिया ॥२१॥ फिर काली ने आकाश में उछल कर अपने दोनों हाथों से पृथ्वी पर चोट की। इससे ऐसा भयंकर शब्द हुआ जिससे पहले के सभी शब्द मन्द पड़ गये ॥२२॥ अब शिवदूती ने दैत्यों के लिए

अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥२३॥
दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा।
तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥२४॥
शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा।
आयान्ती वन्हिकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया ॥२५॥

अमंगलजनक अट्टहास किया, इन शब्दों को सुनकर समस्त असुर थर्रा उठे, किन्तु शुम्भ को बड़ा क्रोध आया ॥२३॥ उस समय देवी ने जब शुम्भ को लक्ष्य करके—"ओ दुरात्मन्! खड़ा रह" कहा, तभी आकाश में खड़े हुए देवता बोल उठे, 'जय हो', 'जय हो' ॥२४॥ शुम्भ ने वहाँ आकर ज्वालाओं से युक्त अत्यन्त भयानक शक्ति चलायी। अग्निमय पर्वत के समान आती हुई उस शक्ति को देवी ने बड़ी भारी उल्का से दूर हटा दिया ॥२५॥ उस समय

सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम्।
निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते ॥२६॥
शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान्।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२७॥
ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम्।
स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह ॥२८॥

शुम्भ की गर्जना से तीनों लोक गूँज उठे। राजन्! उसकी प्रतिध्वनि से वज्र-पात के समान भयानक शब्द हुआ, जिसने सब शब्दों को जीत लिया ॥२६॥ शुम्भ के चलाये हुए बाणों को देवी ने और देवी के चलाये हुए बाणों को शुम्भ ने अपने भयंकर बाणों द्वारा सैकड़ों और हजारों खण्ड कर दिये ॥२७॥ तब क्रोध में भरी हुई चण्डिका ने शुम्भ पर प्रहार किया, जिससे मूर्च्छित हो वह पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥२८॥ इतने में निशुम्भ को चेतना हुई और उसने

ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः ।
आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा ॥२९॥
पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः ।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥३०॥
ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ॥३१॥

धनुष हाथ में लेकर बाणों द्वारा देवी काली और सिंह को घायल कर डाला ॥२९॥ फिर उस दैत्यराज ने दस हजार बांहें बनाकर चक्रों के प्रहार से चण्डिका को आच्छादित कर दिया ॥३०॥ तब दुर्गम पीड़ा का नाश करने वाली भगवती दुर्गा ने कुपित होकर अपने बाणों से उन चक्रों तथा बाणों को काट गिराया ॥३१॥ तब वह गदा हाथ में लेकर बड़े वेग से दौड़ा ॥३२॥ उसके आते ही चंडी ने तीक्ष्ण धारवाली तलवार से उसकी गदा को शीघ्र ही काट डाला।

ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम् ।
अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ॥३२॥
तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका ।
खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥३३॥
शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम् ।
हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ॥३४॥
भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः ।
महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ॥३५॥

तब उसने शूल हाथ में लिया ॥३३॥ देवताओं को पीड़ा देने वाले निशुम्भ को शूल हाथ में लिये आते देख चंडिका ने वेग से चलाये हुए अपने शूल से उसकी छाती छेद डाली ॥३४॥ शूल से विदीर्ण हो जाने पर उसकी छाती से एक दूसरा महाबली पुरुष 'खड़ी रह', 'खड़ी रह' कहता हुआ निकला ॥३५॥ उस निकलते हुए

तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि ॥३६॥
ततः सिंहश्चखादोग्र दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान्।
असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ॥३७॥
कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ॥३८॥

पुरुष की बात सुनकर देवी अट्टहास कर हँस पड़ीं और खड्ग से उन्होंने उसका मस्तक काट डाला। फिर तो वह पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥३६॥ तत्पश्चात् सिंह अपनी दाढ़ों से असुरों की गर्दनें कुचलकर खाने लगा। यह बड़ा भीषण दृश्य था। उधर काली तथा शिवदूती ने भी अन्यान्य दैत्यों का भक्षण आरम्भ किया। ॥३७॥ कौमारी की शक्ति से विदीर्ण होकर कितने ही महादैत्य नष्ट हो गये। ब्रह्माणी के मन्त्रपूत जल से निस्तेज होकर कितने ही भाग खड़े हुए ॥३८॥

माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे।
वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ॥३९॥
खण्डं खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः।
वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे ॥४०॥
केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात्।
भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूतीमृगाधिपैः ॥ॐ ॥४१॥

कितने ही दैत्य माहेश्वरी के त्रिशूल से छिन्न-भिन्न हो खेत रहे। वाराही के थूथन की चोट से कितनों का पृथ्वी पर कचूमर निकल गया ॥३९॥ वैष्णवी ने भी अपने चक्र से दानवों के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। ऐन्द्री के हाथ से छूटे हुए वज्र से भी कितने ही प्राणों से हाथ धो बैठे ॥४०॥ कुछ असुर नष्ट हो गए, कुछ भाग गए तथा कितने ही काली, शिवदूती तथा सिंह के ग्रास बन गए ॥४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये निशुम्भवधो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

उवाच २, श्लोकाः ३९, एवं ४१, एवमादितः ५४३॥

दशमोऽध्यायः

ध्यानम्

'ॐ' उत्तप्तहेमरुचिरां रविचन्द्रवह्नि-
नेत्रां धनुश्शरयुताङ्कुशपाशशूलम् ।
रम्यैर्भुजैश्च दधतीं शिवशक्तिरूपां
कामेश्वरीं हृदि भजामि धृतेन्दुलेखाम् ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम् ।
हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ २ ॥

ऋषि बोले—॥१॥ राजन् ! अपने प्राणों के समान प्यारे भाई निशुम्भ को मारा गया देख तथा सारी सेना का संहार होता जान शुम्भ ने कुपित

बलावलेपाद् दुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह ।
अन्यासां बलमाश्रित्य युद्धयसे यातिमानिनी ॥ ३ ॥

देव्युवाच ॥ ४ ॥

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥ ५ ॥
ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम् ।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासोत्तदाम्बिका ॥ ६ ॥

होकर कहा—॥२॥ "दुष्ट दुर्गे ! तू बल के मद में आकर झूठ-मूठ का घमण्ड न दिखा। तू बड़ी अभिमानिनी बनी हुई है किन्तु दूसरी स्त्रियों का सहारा लेकर लड़ती है" ॥३॥ देवी बोलीं—॥४॥ ओ दुष्ट ! मैं अकेली ही हूँ। इस संसार में मेरे सिवा दूसरी कौन है। देख, ये मेरी ही विभूतियाँ हैं, इसलिए मुझ में ही प्रवेश कर रही हैं ॥५॥ तत्पश्चात् ब्रह्माणी आदि समस्त देवियाँ अंबिका देवी के शरीर में समा गयीं। उस समय केवल अम्बिका देवी ही शेष

देव्युवाच ॥ ७ ॥

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता ।
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ॥ ८ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः ।
पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ॥१०॥
शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः ।
तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयङ्करम् ॥११॥

रह गयीं ॥६॥ देवी बोलीं—॥७॥ मैं अपनी विभूति से अनेक रूपों में यहाँ उपस्थित हुई थी । उन सब रूपों को मैंने समेट लिया, अब अकेली ही युद्ध में खड़ी हूँ । तुम भी स्थिर हो जाओ ॥८॥ ऋषि बोले——॥९॥ तदनन्तर देवी और शुम्भ दोनों में सब देवताओं तथा दानवों के देखते-देखते भयंकर संग्राम छिड़ गया ॥१०॥ बाणों की बौछार तथा पैने शस्त्रों और दारुण अस्त्रों के प्रहार के

दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका ।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥१२॥
मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी ।
बभञ्ज लीलयैवोग्रहुङ्कारोच्चारणादिभिः ॥१३॥
ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः ।
सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ॥१४॥

कारण उन दोनों का युद्ध सब लोगों को बड़ा भयानक प्रतीत हुआ ॥११॥ अंबिका देवी ने सैंकड़ों दिव्यास्त्र छोड़े, उन्हें दैत्यराज शुम्भ ने उनके प्रतिकारक अस्त्रों द्वारा काट डाला ॥१२ इसी प्रकार शुम्भ ने जो भी दिव्य अस्त्र चलाये, उन्हें परमेश्वरी ने भयंकर हुंकार शब्द के उच्चारण मात्र से खेल-खेल में ही विनष्ट कर डाला ॥१३॥ तब उस दैत्य ने सैंकड़ों बाणों से देवी को ढक दिया । यह देख क्रोध में भर उस देवी ने भी बाण फेंक कर उसका

छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे।
चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ॥१५॥
ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत्।
अभ्यधावत्तदा देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥१६॥
तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका।
धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ॥१७॥

धनुष काट डाला ॥१४॥ तदनन्तर असुरों के स्वामी शुम्भ ने सौ चाँद वाली चमकती हुई ढाल और तलवार हाथ में ले, उस समय देवी पर आक्रमण किया ॥१५-१६॥ उसके आते ही चण्डिका ने अपने धनुष से छोड़े हुए पैने बाणों द्वारा उसकी सूर्य-किरणों के समान प्रकाशमान ढाल और तलवार को तुरन्त काट दिया ॥१७॥ फिर उस दैत्य के घोड़े और सारथी भी मारे गये, धनुष तो पहले ही कट चुका था, अब उसने अम्बिका को मारने के लिए उद्यत

हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः ॥१८॥
चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः।
तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥१९॥
स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः।
देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ॥२०॥

हो भयंकर मुद्गर हाथ में लिया ॥१८॥ उसे आते देख देवी ने अपने पैने बाणों से उसका मुद्गर भी काट डाला, इस पर भी वह असुर मुक्का तानकर बड़े वेग से देवी की ओर लपका ॥१९॥ उस असुरेश्वर ने देवी की छाती में मुक्का मारा, तब देवी ने भी उसकी छाती में एक मुष्टि प्रहार किया ॥२०॥ देवी का थप्पड़ खाकर दैत्यराज शुम्भ पृथ्वी पर गिर पड़ा किन्तु पुनः सहसा पूर्व-

तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले।
स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥२१॥
उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ॥२२॥
नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम्।
चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥२३॥

वत् उठकर खड़ा हुआ ॥२१॥ फिर उछला और देवी को ऊपर लेजाकर आकाश में खड़ा हो गया। तब चण्डिका आकाश में भी बिना किसी आधार के ही शुम्भ के साथ युद्ध करने लगीं ॥२२॥ उस समय दैत्य और चण्डिका आकाश में एक-दूसरे से लड़ने लगे। उनका वह युद्ध सिद्धों और मुनियों को आश्चर्य में डालने वाला हुआ ॥२३॥ फिर अम्बिका ने शुम्भ के साथ बहुत देर तक युद्ध करने के

ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह।
उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ॥२४॥
स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः।
अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ॥२५॥
तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम्।
जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ॥२६॥

पश्चात् उसे उठाया और पृथ्वी पर पटक दिया ॥२४॥ पटके जाने पर पृथ्वी पर आने के बाद वह दुरात्मा असुर पुनः चंडिका को मारने के लिए उनकी ओर बड़े वेग से दौड़ा ॥२५॥ तब समस्त दैत्यों के राजा शुम्भ को अपनी ओर आते देख देवी ने शूल से उसकी छाती छेदकर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया ॥२६॥ देवी के शूल की धार से घायल होने पर उसके प्राण-पखेरू उड़ गये और वह समुद्रों, द्वीपों तथा पर्वतों सहित पृथ्वी को कँपाता हुआ भूमि पर गिर

स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः।
चालयन् सकलां पृथ्वी साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ॥२७॥
ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि।
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः ॥२८॥
उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः।
सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ॥२९॥

पड़ा ॥२७॥ उस दुरात्मा के मारे जाने पर सारा जगत् प्रसन्न हो गया। आकाश स्वच्छ दिखाई देने लगा ॥२८॥ पहले जो उत्पातसूचक मेघ और उल्कापात होते थे, वे सब शान्त हो गये तथा उस दैत्य के मारे जाने पर नदियाँ भी ठीक मार्ग से बहने लगीं ॥२९॥ शुम्भ की मृत्यु के बाद सम्पूर्ण देवताओं का हृदय आह्लाद से भर गया और गन्धर्वगण मीठे-मीठे गीत गाने

ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः।
बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः ॥३०॥
अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥३१॥
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः॥ॐ॥३२॥

लगे ॥३०॥ कुछ गन्धर्व बाजे बजाने लगे, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। पवित्र वायु बहने लगी, सूर्य की कांति उत्तम हो गयी ॥३१॥ यज्ञशाला की बुझी हुई आग स्वतः ज्वलित हो उठी तथा सम्पूर्ण दिशाओं के भयंकर शब्द शान्त हो गये ॥३२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भवधो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥
उवाच ४, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः २७, एवम् ३२, एवमादितः ५७५॥

एकादशोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐबालरविद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥

ॐ ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे
सेन्द्राः सुरा वन्हिपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद्
विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः ॥२॥

ऋषि बोले—॥१॥ देवी के द्वारा वहाँ महा असुरेश्वर शुम्भ के मारे जाने पर इन्द्र आदि देवता अग्नि को आगे करके उन कात्यायनी देवी की

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥ ३ ॥

आधारभूता जगतस्त्वमेका
महीस्वरूपेण यतः स्थितासि ।

स्तुति करने लगे । उस समय इष्ट-प्राप्ति होने से उनके मुख-कमल चमक उठे थे और उनके प्रकाश से दिशाएँ भी जगमगा उठी थीं ॥२॥ देवता बोले—शरणागत की पीड़ा दूर करने वाली देवि ! हम पर प्रसन्न होओ । सम्पूर्ण जगत् की माता ! प्रसन्न होओ । विश्वेश्वरि ! विश्व की रक्षा करो । देवि ! तुम्हीं जड़-चेतन जगत् की स्वामिनी हो ॥३॥ तुम इस जगत् की एकमात्र आधार हो, क्योंकि पृथ्वी रूप में तुम्हारी ही स्थिति है । देवि ! तुम्हारे पराक्रम की

अपां स्वरूपस्थितया त्वयैत-
दाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥ ४ ॥
त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥ ५ ॥

कोई नहीं लांघ सकता। तुम्हीं जलरूप में स्थित होकर सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करती हो ॥४॥ तुम अनन्त बल से सम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो। इस विश्व की कारणभूता परा माया तुम्हीं हो। देवि ! तुमने इस समस्त जगत् को मोहित कर रखा है। तुम्हीं प्रसन्न होने पर इस पृथ्वी पर मोक्ष पद की प्राप्ति कराती हो ॥५॥ सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। जगत् में जितनी भी स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी मूर्तियाँ हैं। जगदम्बे ! एकमात्र तुमने ही इस विश्व

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥ ६ ॥
सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥ ७ ॥
सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥

को व्याप्त कर रखा है। तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है ! तुम तो स्तुति करने योग्य पदार्थों से परे एवं परा वाणी हो ॥६॥ देवि ! जब तुम सर्वस्वरूप एवं स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली हो तब इसी रूप में तुम्हारी स्तुति हो गयी। तुम्हारी स्तुति के लिए इससे अच्छी उक्तियाँ और क्या हो सकती हैं ॥७॥ बुद्धि

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि ।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥
सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१०॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥११॥

रूप से सब लोगों के हृदय में विराजमान रहने वाली तथा स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली नारायणी देवि ! तुम्हें नमस्कार है ॥८॥ कला, काष्ठा आदि के रूप से क्रमशः अवस्था-परिवर्तन की ओर ले जाने वाली तथा विश्व का उपसंहार करने में समर्थ नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥९॥ हे नारायणि ! तुम सब प्रकार का मंगल करने वाली कल्याणमयी हो। मंगलदायिनी शिवा हो। सब पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाली शरणागत वत्सल, तीन नेत्रों वाली एवं गौरी हो। तुम्हें नमस्कार है ॥१०॥ तुम सृष्टि के पालन और संहार की शक्ति-

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१२॥
हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि ।
कौशाम्भः क्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१३॥
त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१४॥

भूता पुरातन देवी, गुणों का आधार तथा सर्वगुण-सम्पन्न हो। नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥११॥ शरण में आये हुए दीनों, पीड़ितों की रक्षा में रत रहने वाली तथा सबकी पीड़ा का निवारण करने वाली नारायणि देवि ! तुम्हें नमस्कार है ॥१२॥ नारायणि ! तुम ब्रह्माणी का रूप धारण करके हंसों से जुते हुए विमान पर बैठती तथा कुशमिश्रित जल छिड़कती रहती हो। तुम्हें नमस्कार है ॥१३॥ माहेश्वरी रूप से त्रिशूल, चन्द्रमा एवं सर्प को धारण करने वाली तथा महान् वृषभ की पीठ पर बैठने वाली नारायणि

मयूरकुक्कुटवृते महशक्तिधरेऽनघे ।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१५॥
शङ्खचक्रगदाशाङ्र्गगृहीतपरमायुधे ।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोस्तु ते ॥१६॥
गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे ।
वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१७॥

देवि ! तुम्हें नमस्कार है ॥१४॥ मोरों और मुर्गों से घिरी रहने वाली तथा महाशक्ति को धारण करने वाली कौमारी रूप-धारिणी निष्पापे नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥१५॥ शंख, चक्र, गदा और शाङ्र्ग-धनुष रूप उत्तम अस्त्रायुधों को धारण करने वाली वैष्णवी शक्तिरूपा नारायणि ! तुम प्रसन्न होओ। तुम्हें नमस्कार है ॥१६॥ हाथ में भयानक महाचक्र लिये और दाढ़ों पर धरती को उठाये वाराही रूपधारिणी कल्याणमयी नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥१७॥ भयंकर नृसिंहरूप से दैत्यों के वध के लिए उद्योग करने वाली तथा

नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे ।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१८॥
किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले ।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१९॥
शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले ।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२०॥

त्रिभुवन की रक्षा में संलग्न रहने वाली नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥१८॥ मस्तक पर किरीट और हाथ में महावज्र धारण करने वाली, सहस्र नेत्रों के कारण उद्दीप्त दिखाई देने वाली और वृत्रासुर के प्राणों का अपहरण करने वाली इन्द्र शक्तिरूपा नारायणि देवि ! तुम्हें नमस्कार है ॥१९॥ शिवदूती रूप से दैत्यों की महती सेना का संहार करने वाली तथा भयंकर रूप धारण करने वाली नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥२०॥ दाढ़ों के कारण भयंकर मुखवाली,

दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते॥२१॥
लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे।
महारात्रि महाविद्ये नारायणि नमोऽस्तु ते॥२२॥
मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते॥२३॥

मुंडमाला से अलंकृत, मुंडमर्दिनी चामुंडा रूपा नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥२१॥ महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, लक्ष्मी, ध्रुवा, महारात्रि, लज्जा तथा महा अविद्या रूपा! तुम्हें नमस्कार है॥२२॥ मेधा, सरस्वती, वरा, भूति, तामसी, नियता तथा ईशा रूपिणी नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥२३॥ सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकार की शक्ति से सम्पन्न दिव्यरूपा दुर्गे देवि! सब भयों से हमारी रक्षा करो, तुम्हें नमस्कार है॥२४॥ कात्यायनि! यह

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥२४॥
एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम्।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते॥२५॥
ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम्।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते॥२६॥

तीन नेत्रों से शोभित तुम्हारा सौम्य मुख सब प्रकार के भयों से हमारी रक्षा करे। तुम्हें नमस्कार है॥२५॥ भद्रकाली! ज्वालाओं के कारण विकराल प्रतीत होने वाला, अत्यन्त भयंकर और समस्त असुरों का संहार करने वाला तुम्हारा त्रिशूल भय से हमारी रक्षा करे। तुम्हें नमस्कार है॥२६॥ देवि! जो अपनी ध्वनि से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके दैत्यों का तेज नष्ट कर देता है, वह तुम्हारा घण्टा हम लोगों को पापों से उसी प्रकार रक्षा करे जैसे माता

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव ॥२७॥
असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ॥२८॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिताह्याश्रयतांप्रयान्ति॥२९

अपने पुत्रों को बुरे कर्मों से बचाती है ॥२७॥ चण्डिके तुम्हारे हाथों में सुशोभित खड्ग जो असुरों के रक्त और चर्बी से चर्चित है, वह हमारे लिए कल्याण-कारक हो। हम तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥२८॥ देवि ! तुम प्रसन्न होने पर सब रोगों को नष्ट कर देती हो और कोपित होने पर मनोवाञ्छित सभी काम-नाओं का नाश कर देती हो। जो लोग तुम्हारी शरण में जा चुके हैं, उन पर विपत्ति तो आती ही नहीं। तुम्हारी शरण में गये हुए मनुष्य दूसरों को शरण

एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य धर्मद्विषां देवि महासुराणाम् ।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥३०
विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या ।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ॥३१
रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।

देने योग्य हो जाते हैं ॥२९॥ देवि ! अंबिके !! तुमने अपने स्वरूप को अनेक भागों में बाँट करके नाना प्रकार के रूपों से जो इस समय इन धर्म-द्रोही महा-दैत्यों का संहार किया है, वह सब दूसरी कौन कर सकती थी ॥३०॥ विद्याओं में, ज्ञान को प्रकाशित करने वाले शास्त्रों में तथा आदिवाक्यों में तुम्हारे अति-रिक्त और किसका वर्णन है तथा तुम्हें छोड़कर दूसरी कौन ऐसी शक्ति है, जो विश्व को अज्ञानमय घोर अन्धकार से परिपूर्ण ममतारूपी गढ़े में निरन्तर भटका रही हो ॥३१॥ जहाँ राक्षस हों, जहाँ भयंकर विषैले साँप हों, जहां शत्रु

दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥३२॥
विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥३३॥

और लुटेरों की सेना हो, और जहाँ दावानल हो, वहाँ तथा समुद्र के बीच भी रहकर तुम विश्व की रक्षा करती हो ॥३२॥ विश्वेश्वरि ! तुम विश्व का पालन करती हो। विश्वरूपा हो, इसलिए संपूर्ण विश्व को धारण करती हो। तुम भगवान् विश्वनाथ की भी वन्दनीया हो। जो लोग भक्तिपूर्वक तुम्हारे सामने मस्तक नवाते हैं, वे संपूर्ण विश्व को आश्रय देने वाले होते हैं ॥३३॥ देवि ! प्रसन्न होओ। जैसे इस समय असुरों का वध करके तुमने हमारी रक्षा की है, उसी प्रकार सदा हमें शत्रुओं के भय से बचाओ। संपूर्ण

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥३४॥
प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥३५॥
देव्युवाच ॥३६॥
वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥३७॥

जगत् का पाप नष्ट कर बड़े-बड़े उपद्रवों को शीघ्र दूर करो ॥३४॥ विश्व की पीड़ा दूर करने वाली देवि ! हम तुम्हारे चरणों पर पड़े हुए हैं, हम पर प्रसन्न होओ। त्रिलोक निवासियों की वन्दनीया परमेश्वरि ! सब लोगों को वरदान दो ॥३५॥

देवी बोलीं—॥३६॥ देवताओ ! मैं वरदान देने को तैयार हूँ। तुम्हारे मन में जिस वर की इच्छा हो, वह वर माँग लो। संसार के लिए उस उपकारक वर को मैं अवश्य दूँगी ॥३७॥

देवा ऊचुः ॥३८॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥३९॥

देवता बोले—॥३८॥ सर्वेश्वरि ! तुम इसी प्रकार तीनों लोकों की सारी बाधाओं को शान्त करो और हमारे शत्रुओं का नाश करती रहो ॥३९॥

देव्युवाच ॥४०॥

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ॥४१॥

देवी बोलीं—॥४०॥ देवताओ ! वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाइसवें युग में शुम्भ और निशुम्भ नाम के दो अन्य महादैत्य पैदा होंगे ॥४१॥ तब मैं नन्द

नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ॥४२॥
पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥४३॥
भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्महासुरान्।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ॥४४॥

गोप के घर में उनकी पत्नी यशोदा के गर्भ से पैदा हो, विन्ध्याचल में जाकर रहूँगी और उक्त दोनों असुरों का नाश करूँगी ॥४२॥ फिर अत्यन्त भयंकर रूप से पृथ्वी पर अवतार ले मैं वैप्रचित्त नाम वाले दानवों का वध करूँगी ॥४३॥ उन भयंकर महादैत्यों को भक्षण करते समय मेरे दाँत अनार के फूल की भाँति लाल हो जाएँगे ॥४४॥ तब स्वर्ग में देवता और मर्त्यलोक में मनुष्य सदा मेरी स्तुति करते हुए मुझे 'रक्तदन्तिका' कहेंगे ॥४५॥ फिर जब पृथ्वी पर सौ

ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः ।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥४५॥
भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ॥४६॥
ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् ।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ॥४७॥

वर्षों के लिए वर्षा रुक जायगी और पानी का अभाव हो जायगा, उस समय मुनियों के स्तुति करने पर मैं पृथ्वी पर अयोनिजा रूप में प्रकट होऊँगी ॥४६॥ और सौ नेत्रों से मुनियों की ओर देखूँगी। अतः मनुष्य 'शताक्षी' इस नाम से मेरा कीर्तन करेंगे ॥४७॥ देवताओ ! उस समय मैं अपने शरीर से उत्पन्न हुए शाकों द्वारा समस्त संसार का भरण-पोषण करूँगी। जब तक वर्षा नहीं होगी, तब तक वे शाक ही सबके प्राणों की रक्षा करेंगे ॥४८॥ ऐसा करने के कारण

ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः ।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥४८॥
शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि ।
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥४९॥
दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ॥५०॥
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः ॥५१॥

पृथ्वी पर 'शाकम्भरी' के नाम से मेरी प्रसिद्धि होगी। उसी अवतार में मैं दुर्गम नामक महादैत्य का वध भी करूँगी ॥४९॥ इससे मेरा नाम 'दुर्गादेवी' के रूप से प्रसिद्ध होगा। फिर जब मैं भीम रूप धारण करके मुनियों की रक्षा के

भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ॥५२॥
तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम् ।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥५३॥
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ॥५४॥

लिए हिमालय पर्वत पर रहने वाले राक्षसों का भक्षण करूँगी, उस समय सब मुनि भक्ति से नत-मस्तक होकर मेरी स्तुति करेंगे ॥५०-५१॥ तब मेरा नाम 'भीमादेवी' के रूप से प्रसिद्ध होगा । जब अरुण नामक दैत्य तीनों लोकों में भारी उपद्रव मचायेगा ॥५२॥ तब मैं तीनों लोकों का हित करने के लिए छः पैरों वाले असंख्य भ्रमरों का रूप धारण करके उस महान् असुर का वध करूँगी ॥५३॥ उस समय सब लोग 'भ्रामरी' के नाम से चारों ओर मेरी स्तुति

तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥ॐ॥ ५५॥

करेंगे। इस प्रकार जब-जब संसार में दानवी बाधा उपस्थित होगी, तब-तब अवतार लेकर मैं शत्रुओं का संहार करूँगी ॥५४-५५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्याः स्तुतिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥
उवाच ४, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः ५०, एवम् ५५, एवमादितः ६३० ॥

द्वादशोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।

हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

'ॐ' देव्युवाच ॥१॥

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः ।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥२॥
मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम् ।
कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद् वधं शुम्भनिशुम्भयोः ॥३॥

देवी बोलीं—॥१॥ देवताओ! जो एकाग्र मन होकर प्रतिदिन इन स्तुतियों से मेरी वन्दना करेगा, उसकी सारी बाधा मैं निश्चय ही दूर कर दूंगी ॥२॥ जो मधु-कैटभ का नाश, महिषासुर का वध तथा शुम्भ-निशुम्भ के संहार के प्रसंग का पाठ करेंगे ॥३॥ तथा अष्टमी, चतुर्दशी और नवमी को भी जो

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः ।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥४॥
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः ।
भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥५॥
शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः ।
न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भविष्यति ॥६॥

एकाग्र मन हो भक्ति-भरे हृदय से मेरे उत्तम माहात्म्य का श्रवण करेंगे ॥४॥ उन्हें कोई पाप नहीं छू सकेगा। उन पर पापों से आने वाली आपत्तियाँ भी नहीं आएँगी। उनके घर में कभी निर्धनता नहीं होगी तथा उनको कभी प्रेमी-जनों के वियोग का दुःख भी नहीं सहना पड़ेगा ॥५॥ इतना ही नहीं, उन्हें शत्रु से, लुटेरों से, राजा से, शस्त्र से, अग्नि से तथा जल से भी कभी भय नहीं होगा ॥६॥ इसलिए सबको एकाग्र चित्त होकर भक्तिपूर्वक मेरे इस माहात्म्य को

तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ॥७॥
उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान्।
तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥८॥
यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ्नित्यमायतने मम।
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सांनिध्यं तत्र मे स्थितम् ॥९॥

सदा पढ़ना और श्रवण करना चाहिए। यह परम कल्याणकारक है ॥७॥ मेरा माहात्म्य महामारी से पैदा होने वाले समस्त उपद्रवों तथा आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक तीनों उत्पातों को शान्त करने वाला है ॥८॥ मेरे जिस मन्दिर में प्रतिदिन विधिपूर्वक मेरे इस माहात्म्य का पाठ होता है, उस स्थान को मैं कभी नहीं छोड़ती। वहाँ सदा ही मेरा वास रहता है ॥९॥ बलि, पूजा, होम तथा महोत्सव के अवसरों पर मेरे चरित्र का पूरा-पूरा पाठ और श्रवण

बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे।
सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥१०॥
जानताऽजानता वापि बलिपूजां तथा कृताम्।
प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ॥११॥
शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥१२॥

करना चाहिए ॥१०॥ ऐसा करने पर मनुष्य विधि को जानकर या बिना जाने भी मेरे लिए जो बलि, पूजा या होम आदि करेगा, उसे मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ ग्रहण करूँगी ॥११॥ शरत्काल में जो वार्षिक महापूजा की जाती है, उस अवसर पर जो मेरे इस माहात्म्य को भक्तिपूर्वक सुनेगा, वह मनुष्य मेरे प्रसाद से सब बाधाओं से मुक्त तथा धन-धान्य एवं पुत्र से सम्पन्न होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥१२-१३॥ मेरे इस माहात्म्य को सुनकर तथा मेरी

सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥१३॥
श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः।
पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥१४॥
रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते।
नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥१५॥
शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने।
ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥१६॥

शुभ उत्पत्तियों को सुनकर और युद्ध में किये मेरे पराक्रमों को सुनकर मनुष्य निर्भय हो जाता है ॥१४॥ उसके शत्रुओं का नाश हो जाता है और उसका सब प्रकार से कल्याण होता है तथा उसका कुल सुखी रहता है ॥१५॥ सर्वत्र शान्ति कर्म में, बुरे स्वप्न दिखाई देने पर तथा ग्रहजनित भयंकर पीड़ा उपस्थित

उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः।
दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥१७॥
बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम्।
संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥१८॥
दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम्।
रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥१९॥

होने पर मेरा माहात्म्य श्रवण करना चाहिए ॥१६॥ इससे सब विघ्न बाधा तथा भयंकर ग्रह-पीड़ाएँ शान्त हो जाती हैं और मनुष्यों द्वारा देखा दुःस्वप्न शुभस्वप्न में बदल जाता है ॥१७॥ बालग्रहों से पीड़ित हुए बालकों के लिए यह माहात्म्य शान्तिकारक है तथा मनुष्यों के संगठन में फूट होने पर यह अच्छी प्रकार मैत्री कराने वाला होता है ॥१८॥ यह माहात्म्य सारे दुष्टजनों के बल का नाश करने वाला है। इसके पाठमात्र से राक्षसों, भूतों और पिशाचों का विनाश हो जाता है ॥१९॥ मेरा यह सब माहात्म्य मेरे सामीप्य की प्राप्ति

सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम्।
पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ॥२०॥
विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम्।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ॥२१॥
प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते।
श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति ॥२२॥

कराने वाला है। पत्र, पुष्प, अर्घ्य, धूप, दीप, गन्ध आदि उत्तम सामग्रियों द्वारा आराधना करने से, प्रतिदिन स्नान करने से, नाना प्रकार के अन्य भोगों का अर्पण करने से तथा दान देने आदि से, एक वर्ष तक जो मेरी पूजा की जाती है, उससे मुझे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी प्रसन्नता मेरे इस उत्तमचरित्र का एक बार श्रवण करने मात्र से हो जाती है। यह माहात्म्य श्रवण करने पर पापों को हर लेता और आरोग्य प्रदान करता है ॥२०-२२॥ मेरे प्रादुर्भाव का

रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम।
युद्धेषु चरितं यन्मे *दुष्टदैत्यनिबर्हणम् ॥२३॥
तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते।
युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥२४॥
ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम्।
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः ॥२५॥

कीर्तन समस्त भूतों से रक्षा करता है तथा मेरा युद्ध विषयक चरित्र दुष्ट असुरों का संहार करने वाला है ॥२३॥ इसके श्रवण करने पर मनुष्यों को शत्रु का भय नहीं रहता। देवताओ! तुमने और ब्रह्मर्षियों ने जो मेरी स्तुतियां की हैं ॥२४॥ तथा ब्रह्माजी ने जो मेरी स्तुतियां की हैं, वे सभी कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। वन में, सूने मार्ग में अथवा दावानल से घिर जाने पर ॥२५॥ निर्जन स्थान में लुटेरों के पंजे में पड़ जाने पर या शत्रुओं से पकड़े जाने पर अथवा

दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः।
सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ॥२६॥
राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा।
आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ॥२७॥
पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे।
सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा ॥२८॥

जंगल में सिंह, बाघ या जंगली हाथियों के पीछा करने पर ॥२६॥ क्रोधित राजा के आदेश से वध या बन्धन के स्थान में ले जाये जाने पर अथवा महासागर में नाव पर बैठने के बाद भारी तूफान से नाव के डगमग होने पर ॥२७॥ अत्यन्त भयंकर युद्ध में शस्त्रों का प्रहार होने पर अथवा वेदना से ग्रसित होने पर, सभी भयानक बाधाओं के उपस्थित होने पर ॥२८॥ जो मेरे इस चरित्र का स्मरण करता है, वह संकट से मुक्त हो जाता है। मेरे प्रभाव से

स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत सङ्कटात्।
मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ॥२९॥
दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥३०॥

ऋषिरुवाच ॥३१॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ॥३२॥
पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत।
तेऽपि देवा निरातङ्काः स्वाधिकारान् यथा पुरा ॥३३॥

सिंह आदि जंगली खूंखार जानवर नष्ट हो जाते हैं तथा लुटेरे और शत्रु भी मेरे चरित्र का स्मरण करने वाले पुरुष से दूर भागते हैं ॥२९-३०॥ ऋषि बोले—॥३१॥ यों कहकर प्रचण्ड पराक्रम वाली भगवती चण्डिका सब देवताओं के देखते-देखते ही अन्तर्धान हो गई। फिर समस्त देवता भी शत्रुओं के मारे जाने से निर्भय हो पहले की भांति यज्ञभाग का उपभोग करते हुए अपने-अपने अधिकार का पालन करने लगे। संसार का संहार करने वाले, महा-

यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः ।
दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ॥३४॥
जगद्विध्वंसिनि तस्मिन् महोग्रेऽतुलविक्रमे ।
निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ॥३५॥
एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः ।
सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥३६॥
तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते ।
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥३७॥

भयंकर अतुल पराक्रमी नीच देवशत्रु शुम्भ तथा महाबली निशुम्भ के युद्ध में देवी द्वारा मारे जाने पर शेष दैत्य पाताल लोक में चले गये ॥३२-३५॥ राजन्! इस प्रकार भगवती अंबिका देवी नित्या होते हुए भी पुनः पुनः प्रकट होकर जगत् की रक्षा करती हैं ॥३६॥ वे ही इस विश्व को मोहित करती, वे

व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर ।
महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥३८॥
सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा ।
स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥३९॥
भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे ।
सैवाभावे तथालक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥४०॥

ही जगत् को जन्म देती तथा वे ही प्रार्थना करने पर सन्तुष्ट हो विज्ञान एवं समृद्धि प्रदान करती हैं ॥३७॥ राजन्! महाप्रलय के समय महामारी का स्वरूप धारण करने वाली वे महाकाली ही इस समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त हैं ॥३८॥ वे ही समय आने पर महामारी स्वरूप होती हैं और वे ही स्वयं अजन्मा होती हुई भी सृष्टि के रूप में प्रकट होती हैं। वे सनातनी देवी ही समयानुसार संपूर्ण भूतों की रक्षा करती हैं ॥३९॥ मनुष्यों के अभ्युदय के समय वे ही गृह-लक्ष्मी के रूप में स्थित हो उन्नति प्रदान करती हैं और वे

स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं शुभाम्॥ॐ॥४१॥

ही अभाव के समय दरिद्रता बनकर विनाश का कारण होती हैं ॥४०॥ पुष्प, धूप, और गन्ध आदि से पूजन करके उनकी स्तुति करने पर वे धन, धार्मिक बुद्धि तथा उत्तम गति प्रदान करती हैं ॥४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
फलस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥
उवाच २, अर्धश्लोकौ २, श्लोकाः ३७, एवम् ४१, एवमादितः ६७१ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्।
पाशाङ्कुशवराभीतिर्धारयन्तीं शिवां भजे॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥१॥

एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम्।
एवं प्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत्॥ २॥
विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया।
तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः॥३॥
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे।
तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम्॥४॥

ऋषि बोले—॥१॥ राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे देवी के अनुपम माहात्म्य का वर्णन किया। जो इस जगत् को धारण करती हैं उन देवी का ऐसा ही प्रभाव हैं ॥२॥ वे ही विद्या (ज्ञान) उत्पन्न करती हैं। भगवान् विष्णु की मायास्वरूपा उन भगवती के द्वारा ही तुम, यह वैश्य तथा अन्यान्य विवेकीजन मोहित होते हैं, मोहित हुए हैं तथा भविष्य में भी मोहित होंगे। महाराज! तुम उन्हीं परमेश्वरी की शरण में जाओ ॥३-४॥ पूजा करने पर वे ही मनुष्य को भोग, स्वर्ग तथा

आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥५॥

मार्कण्डेय उवाच ॥६॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः ॥७॥
प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम् ।
निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ॥८॥
जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने ।
सदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ॥९॥

मोक्ष प्रदान करती है ॥५॥ मार्कण्डेय जी कहते हैं—॥६॥ क्रोष्टुकि जी ! मेधा मुनि के वचन सुनकर राजा सुरथ ने उत्तम व्रत का पालन करने वाले उन महाभाग महर्षि को प्रणाम किया। वे अत्यन्त ममता और राज्य के छिन जाने से बहुत खिन्न हो चुके थे ॥७-८॥ महामुने ! इसलिए विरक्त होकर वे राजा तथा वैश्य तत्काल तपस्या करने चले गये और वे जगदम्बा के दर्शन के लिए नदी के तट पर रहकर तपस्या करने लगे ॥९॥ वह राजा और वैश्य उत्तम देवीसूक्त का

स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ।
तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ॥१०॥
अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ।
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ॥११॥
ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ।
एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥१२॥
परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥१३॥

जप करते हुए तपस्या में लग गये। वे दोनों नदी के तट पर देवी की मिट्टी की मूर्ति बनाकर पुष्प, धूप और हवन आदि के द्वारा उनकी आराधना करने लगे। उन्होंने पहले तो आहार को धीरे-धीरे कम किया। फिर बिल्कुल निराहार रह कर देवी में मन लगाकर एकाग्रतापूर्वक उनका चिन्तन आरम्भ किया ॥१०-११॥ वे दोनों अपने शरीर के रक्त से प्रोक्षित बलि देते हुए लगातार तीन वर्षों तक संयमपूर्वक पूजा करते रहे ॥१२॥ इस पर प्रसन्न होकर जगत

देव्युवाच ॥ १४ ॥

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन ।
मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥१५॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ १६ ॥

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ।
अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥१७॥

को धारण करने वाली चण्डिका देवी ने साक्षात् दर्शन देकर कहा ॥१३॥ देवी बोलीं—॥१४॥ हे राजन् तथा अपने कुल को आनन्दित करने वाले वैश्य ! तुम लोग जिस वस्तु की कामना रखते हो, वह मुझसे मांगो, मैं सन्तुष्ट हूँ । अतः तुम्हें वह सब कुछ दूंगी ॥१५॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—॥१६॥ तब राजा ने दूसरे जन्म में नष्ट न होने वाला राज्य मांगा तथा इस जन्म में भी शत्रुओं की सेना को बलपूर्वक नष्ट करके पुनः अपना राज्य प्राप्त कर लेने का वरदान मांगा ॥१७॥ वैश्य का चित्त संसार

सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः ।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥१८॥

देव्युवाच ॥१९॥

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ॥२०॥
हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥२१॥
मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः ॥२२॥
सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ॥२३॥

की ओर से खिन्न एवं विरक्त हो चुका था और वह बड़ा बुद्धिमान् था । अतः उस समय उसने ममता और अहंकार रूप आसक्ति का नाशक ज्ञान मांगा ॥१८॥ देवी बोलीं—॥१९॥ राजन् ! तुम थोड़े ही दिनों में शत्रुओं को मार कर अपना राज्य प्राप्त कर लोगे ! अब वहां तुम्हारा राज्य स्थिर रहेगा ॥२०-२१॥ फिर मृत्यु के पश्चात् तुम भगवान् सूर्य के अंश से जन्म लेकर इस पृथ्वी पर सावर्णिक मनु के नाम से विख्यात होओगे ॥२२-२३॥ वैश्यवर्य ! तुमने भी सजि

वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ॥२४॥
तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥२५॥

मार्कण्डेय उवाच ॥२६॥

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् ॥२७॥
बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता।
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥२८॥
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥२९॥

वर को मुझसे प्राप्त करने की इच्छा की है, उसे देती हूँ। तुम्हें मोक्ष के लिए ज्ञान प्राप्त होगा ॥२४-२५॥ मार्कण्डेयजी कहते हैं—॥२६॥ इस प्रकार उन दोनों को मनोवाञ्छित वरदान देकर तथा उनके द्वारा भक्तिपूर्वक अपनी स्तुति सुनकर देवी अम्बिका अन्तर्धान हो गयीं। देवी से वरदान पाकर क्षत्रियों में श्रेष्ठ सुरथ सूर्य से जन्म ले सावर्णि नामक मनु हुए ॥२७-२९॥

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः।
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥वलीं ॐ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये सुरथ-वैश्ययोर्वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

उवाच ६, अर्द्धश्लोकाः ११, श्लोकाः १२, एवम् २९, एवमादितः ॥७००॥
समस्ता उवाचमन्त्राः ५७, अर्द्धश्लोकाः ४२,
श्लोकाः ५३५, अवदानानि ॥६६॥

अथोत्तरन्यासाः

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ॥ शंखिनी-चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥ हृदयाय नमः ॥१॥ ॐशूलेन पाहि नो देवी ! पाहि खड्गेन चाम्बिके ॥ घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ शिरसे स्वाहा ॥२॥ ॐप्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चंडिके ! रक्ष दक्षिणे ॥ भ्रामणेनाऽत्मशूलस्य उत्तर-स्यां तथेश्वरि ! ॥ शिखायै वषट् ॥३॥ ॐसौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ॥ यानि चाऽत्यर्थघोराणि तै रक्षास्मां-स्तथा भुवम् ॥ कवचाय हुं ॥४॥ ॐखड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके । करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान्रक्ष सर्वतः ॥

नेत्रत्रयाय वौषट् ॥५॥ ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ॥ भयेभ्यस्त्राहि नो देवी दुर्गे देवि ! नमोऽस्तु ते अस्त्राय फट् ॥६॥ इति षडङ्गन्यासः ।

अथ ऋष्यादि न्यासः

मेधा मार्कण्डेयऋषये नमः शिरसि । गायत्र्यादिनानाछन्दो-भ्यो नमः मुखे । श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहारसस्वतीभ्यो नमः हृदि । ऐं ह्रीं क्लीं बीजेभ्यो नमः नाभौ । क्षमलवरयूं चामुंडा-शक्त्यै नमः गुह्ये । अग्निर्वायुः सूर्यस्तत्त्वेभ्यो नमः सर्वाङ्गे ॥ अथ करन्यासः ॥ ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदनी चक्रिणी तथा । शंखिनी चापिनी बाणभुशुंडी परिघायुधा इति अङ्गुष्ठाभ्यां

नमः ॥ ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके । घंटास्वनेन नः पाहि चापज्यानिस्वनेन चेति तर्जनीभ्यां नमः ॥ ॐप्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चंडिके रक्ष दक्षिणे । भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरीति मध्यमाभ्यां नमः ॥ ॐसौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरंति ते । यानि चात्यर्थ घोराणितैरक्षास्मांस्तथाभुवमित्यनामिकाभ्यां नमः ॥ ॐखड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्रानि तेऽम्बिके । करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः इति कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॥ ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते । भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते इति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥ अथाषडङ्गन्यासः ॥ ॐखड्गिनी शूलिनीत्यादि हृदयाय नमः ॥ ॐशूलेनपाहीति शिरसे स्वाहा ॥ ॐप्राच्यां

रक्षेति शिखायै वषट् । ॐसौम्यानियानीति कवचय हुं ॥ ॐखड्ग शूलगदादीनीति नेत्रत्रयाय वौषट् ॥ ॐ सर्वस्वरूप इत्यस्त्राय फट् ॥ अथध्यानम् ॥ खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघान् शूलं भुशुण्डीं शिरः शङ्खं सन्दधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्ग भूषावृताम् । नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥ १ ॥ अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां दंडं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् । शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रवालप्रभां सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥ २ ॥ घंटाशूलहलानि शङ्खमुशले चक्रं धनुः सायकान् हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् । गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां

महापूर्वामत्रसरस्वतीमनुभजेच्छुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥३॥ इति ध्यानम् ॥

अथ ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तम्

ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ॥ अहं मित्र वरुणोभाबिभर्म्यहमिंद्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥ अहं सोमंमाहनसंबिभर्म्यहंत्वष्टारमुतपूषणंभगम्॥ अहं दधामि द्रविर्णहविष्मतेसुप्राव्ये ३ यजमानायसुन्वते ॥२॥ अहं राष्ट्रीसंगमनीवसूनां चिकितुषीप्रथमायज्ञियानाम् ॥ तां मादेवाव्यदधुःपुरुत्राभूरिस्थात्रांभूर्यावेशयन्तीम् ॥३॥ मायासो अन्नमत्तियोविपश्यति यःप्राणिति य इदं शृणोत्युक्तम् ॥ अमंतवोमांतउपक्षियंति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवंते वदामि ॥४॥ अहमेव

स्वयमिदंवदामिजुष्टंदेवेभिरुतमानुषेभिः॥ यं कामये तं तमुग्रंकृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥ अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषेशरवेहंतवाउ ॥ अहं जनायसमदं कृणोम्यहंद्यावापृथिवी आविवेश ॥६॥ अहं सुवेपितरमस्तमूर्द्धन्ममयोनिरप्स्वान्तः समुद्रे ॥ ततोवितिष्ठेभुवनानिविश्वोतामूंद्यावर्ष्मनोपस्पृशामि ॥७॥ अहमेव वात इवप्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ॥ परो दिवापर एना पृथिव्यैतावती महिना संबभूव ॥८॥

इति ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तं समाप्तम्

अथ तंत्रोक्तं देवीसूक्तम्

देवा ऊचुः॥नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततंनमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥१॥ रौद्रायै नमो

नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः। ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ २ ॥ कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः। नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥ ३ ॥ दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै। ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥४॥ अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः। नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नम ॥५॥ या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥६॥ या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥७॥ या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तयै नमो नमः ॥८॥ या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नम-

स्तस्यै नमो नमः ॥९॥ या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१०॥ या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥११॥ या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१२॥ या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तयै नमो नमः ॥१३॥ या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१४॥ या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१५॥ या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१६॥ या देवी सर्व-

भूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१७॥ या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१८॥ या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१९॥ या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२०॥ या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२१॥ या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२२॥ या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२३॥ या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण

संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२४॥ या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२५॥ या देवी सर्वभूतेषु भ्रांतिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२६॥ इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या। भूतेषु सततं तस्यै व्याप्त्यै देव्यै नमो नमः ॥२७॥ चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२८॥ स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण दिनेशु सेविता। करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तुचापदः ॥२९॥ या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते। या च स्मृता तत्क्षणमेव हंति नः सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥ ३० ॥ इति तन्त्रोक्तं देवीसूक्तं समाप्तम्।

अथ प्राधानिकं रहस्यम्

ॐ अस्य श्रीसप्तशतीरहस्यत्रयस्य नारायण ऋषिरनुष्टुप्छन्दः, महाकालीमहालक्ष्मी-महासरस्वत्यो देवता यथोक्तफलावाप्त्यर्थं जपे विनियोगः ।

राजोवाच

भगवन्नवतारा मे चण्डिकायास्त्वयोदिताः ।
एतेषां प्रकृतिं ब्रह्मन् प्रधानं वक्तुमर्हसि ॥१॥
आराध्यं यन्मया देव्याः स्वरूपं येन च द्विज ।
विधिना ब्रूहि सकलं यथावत्प्रणतस्य मे ॥२॥

राजा बोले—भगवन्! आपने चण्डिका के अवतारों की कथा मुझसे कही। ब्रह्मन्! अब इन अवतारों की प्रधान प्रकृति को कहिए ॥१॥ हे द्विज! मैं आपके चरणों में पड़ा हूं, मुझे देवी के जिस स्वरूप की, और जिस विधि से आराधना करनी है, वह सब यथार्थरूप से बताइए ॥२॥ ऋषि बोले—राजन्!

ऋषिरुवाच

इदं रहस्यं परममनाख्येयं प्रचक्षते ।
भक्तोऽसीति न मे किञ्चित्तवावाच्यं नराधिप ॥३॥
सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी ।
लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ॥४॥
मातुलिङ्गं गदां खेटं पानपात्रं च बिभ्रती ।
नाग लिङ्गं च योनिं च बिभ्रती नृप मूर्द्धनि ॥५॥

यह रहस्य परम गोपनीय है, इसे किसीसे कहने योग्य नहीं बतलाया गया है; किन्तु तुम भक्त हो, इसलिए तुमसे न कहने योग्य मेरे पास कुछ भी नहीं है ॥३॥ त्रिगुणमयी परमेश्वरी महालक्ष्मी ही सबका आदि कारण हैं, वे ही दृश्य और अदृश्यरूप से सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करके स्थित हैं ॥४॥ वे अपनी चार भुजाओं में मातुलिङ्ग (बिजौरे का फल), गदा, खेट (ढाल) एवं पान-पात्र और मस्तक पर, नाग, लिंग तथा योनि—इन वस्तुओं को धारण करती हैं ॥५॥ तपाए हुए सुवर्ण के समान उनकी कान्ति है, तपाए हुए सुवर्ण के ही

तप्तकाञ्चनवर्णाभा तप्तकाञ्चनभूषणा।
शून्यं तदखिलं स्वेन पूरयामास तेजसा ॥६॥
शून्यं तदखिलं लोकं विलोक्य परमेश्वरी।
बभार परमं रूपं तमसा केवलेन हि ॥७॥
सा भिन्नाञ्जनसंकाशा दंष्ट्राङ्कितवरानना।
विशाललोचना नारी बभूव तनुमध्यमा ॥८॥

उनके आभूषण हैं, उन्होंने अपने तेज से इस शून्य जगत् को परिपूर्ण किया है ॥६॥ परमेश्वरी महालक्ष्मी ने इस सम्पूर्ण जगत् को शून्य देखकर केवल तमोगुण रूप उपाधि के द्वारा एक अन्य उत्कृष्ट रूप धारण किया ॥७॥ वह रूप एक नारी के रूप में प्रकट हुआ, जिसके शरीर की कान्ति निखरे हुए काजल की भांति काले रंग की थी। उसका श्रेष्ठ मुख दाढ़ों से सुशोभित था। नेत्र बड़े-बड़े और कमर पतली थी ॥८॥ उसकी चारों भुजाएं ढाल, तलवार, प्याले

खड्गपात्रशिरःखेटैरलंकृतचतुर्भुजा ।
कबन्धहारं शिरसा बिभ्राणा हि शिरःस्रजम् ॥९॥
सा प्रोवाच महालक्ष्मीं ताससी प्रमदोत्तमा।
नाम कर्म च मे मातर्देहि तुभ्यं नमो नमः ॥१०॥
तां प्रोवाच महालक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम्।
ददामि तव नामानि यानि कर्माणि तानि ते ॥११॥

और कटे हुए मस्तष्क से शोभायमान थीं। वह वक्षःस्थल पर कबन्ध (धड़) की तथा मस्तक पर मुण्डों की माला धारण किये हुए थीं ॥९॥ इस प्रकार प्रकट स्त्रियों में श्रेष्ठ तामसी देवी ने महालक्ष्मी से कहा—माताजी! आपको नमस्कार है। मुझे मेरा नाम और कर्तव्य बताइये ॥१०॥ तब महालक्ष्मी ने स्त्रियों में श्रेष्ठ उस तापसी देवी से कहा—'मैं तुम्हें नाम प्रदान करती हूं और तुम्हारे जो-जो कर्म हैं उनको भी बतलाती हूं ॥११॥ महामाया, महा-

महामाया महाकाली महामारी क्षुधा तृषा।
निद्रा तृष्णा चैकवीरा कालरात्रिर्दुरत्यया ॥१२॥
इमानि तव नामानि प्रतिपाद्यानि कर्मभिः।
एभिः कर्माणि ते ज्ञात्वा योऽधीते सोऽश्नुते सुखम् ॥१३॥
तामित्युक्त्वा महालक्ष्मीः स्वरूपमपरं नृप।
सत्त्वाख्येनातिशुद्धेन गुणेनेन्दुप्रभं दधौ ॥१४॥

काली, माहमारी, क्षुधा, तृषा, निद्रा, तृष्णा, एकवीरा, कालरात्रि तथा दुरत्यया—॥१२॥ ये तुम्हारे नाम हैं, जो कर्मों के द्वारा लोक में चरितार्थ होंगे। इन नामों के द्वारा तुम्हारे कर्मों को जानकर जो उनका पाठ करेगा, वह सुख भोगेगा' ॥१३॥ राजन्! महाकाली से यों कहकर महालक्ष्मी ने अत्यन्त शुद्ध सत्वगुण के द्वारा दूसरा रूप धारण किया, जो चन्द्रमा के समान गौर-वर्ण था ॥१४॥ वह श्रेष्ठ नारी अपने हाथों में अक्षमाला, अंकुश, वीणा तथा

अक्षमालाङ्कुशधरा वीणापुस्तकधारिणी।
सा बभूव वरा नारी नामान्यस्यै च सा ददौ ॥१५॥
महाविद्या महावाणी भारती वाक् सरस्वती।
आर्या ब्राह्मी कामधेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी ॥१६॥
अथोवाच महालक्ष्मीर्महाकालीं सरस्वतीम्।
युवां जनयतां देव्यौ मिथुने स्वानुरूपतः ॥१७॥

पुस्तक धारण किये हुए थी। महालक्ष्मी ने उसे भी नाम प्रदान किये ॥१५॥ महाविद्या, महावाणी, भारती, वाक्, सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु, वेदगर्भा और धीश्वरी (बुद्धि की स्वामिनी)—ये तुम्हारे नाम होंगे ॥१६॥ तदनन्तर महालक्ष्मी ने महाकाली और महासरस्वती से कहा—'देवियो! तुम दोनों अपने-अपने गुणों के योग्य स्त्री-पुरुष के जोड़े उत्पन्न करो' ॥१७॥ उन दोनों से यों कहकर महालक्ष्मी ने पहले स्वयं ही स्त्री-पुरुष का एक जोड़ा

इत्युक्त्वा ते महालक्ष्मीः ससर्ज मिथुनं स्वयम्।
हिरण्यगर्भौ रुचिरौ स्त्रीपुंसौ कमलासनौ ॥१८॥
ब्रह्मन् विधे विरिञ्चेति धातरित्याह तं नरम्।
श्रीः पद्मे कमले लक्ष्मीत्याह माता च तां स्त्रियम् ॥१९॥
महाकाली भारती च मिथुने सृजतः सह।
एतयोरपि रूपाणि नामानि च वदामि ते ॥२०॥

उत्पन्न किया। वे दोनों हिरण्यगर्भ (निर्मल ज्ञान से युक्त) सुन्दर तथा कमल के आसन पर विराजमान थे। उनमें से एक नारी और दूसरा नर ॥१८॥ तत्पश्चात् माता महालक्ष्मी ने पुरुष को ब्रह्मन्, विधे, विरंच तथा धाता इस प्रकार सम्बोधित किया और स्त्री को श्री, पद्मा, कमला, लक्ष्मी इत्यादि नामों से पुकारा ॥१९॥ इसके बाद महाकाली और महासरस्वती ने भी एक-एक जोड़ा उत्पन्न किया। इनके भी रूप और नाम मैं तुम्हें बतलाता हूं ॥२०॥ महाकाली ने कण्ठ में नील चिह्न से युक्त, लाल भुजा, श्वेत

नीलकण्ठं रक्तबाहुं श्वेताङ्गं चन्द्रशेखरम्।
जनयामास पुरुषं महाकाली सितां स्त्रियम् ॥२१॥
स रुद्रः शंकरः स्थाणुः कपर्दी च त्रिलोचनः।
त्रयी विद्या कामधेनुः सा स्त्री भाषाक्षरा स्वरा ॥२२॥
सरस्वती स्त्रियं गौरीं कृष्णं च पुरुषं नृप।
जनयामास नामानि तयोरपि वदामि ते ॥२३॥

शरीर और मस्तक पर चन्द्रमा का मुकुट धारण करने वाले पुरुष को तथा गोरे रंग की नारी को जन्म दिया ॥२१॥ वह पुरुष रुद्र, शंकर, स्थाणु, कपर्दी और त्रिलोचन के नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा स्त्री के त्रयी, विद्या, कामधेनु, भाषा, अक्षरा और स्वरा—ये नाम हुए ॥२२॥ राजन्! महासरस्वती ने गोरे रंग की नारी और श्याम रंग के नर को प्रकट किया। उन दोनों के नाम भी तुम्हें बतलाता हूं ॥२३॥ उनमें नर (पुरुष) के नाम

विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो वासुदेवो जनार्दनः।
उमा गौरी सती चण्डी सुन्दरी सुभगा शिवा ॥२४॥
एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे।
चक्षुष्मन्तो नु पश्यन्ति नेतरेऽतद्विदो जनाः ॥२५॥
ब्रह्मणे प्रददौ पत्नीं महालक्ष्मीर्नृप त्रयीम्।
रुद्राय गौरीं वरदां वासुदेवाय च श्रियम् ॥२६॥

विष्णु, कृष्ण, हृषीकेश, वासुदेव और जनार्दन हुए तथा स्त्री उमा, गौरी, सती, चण्डी, सुन्दरी, सुभगा और शिवा—इन नामों से प्रसिद्ध हुई ॥२४॥ इस प्रकार तीनों युवतियाँ ही तत्काल पुरुष को प्राप्त हुईं। इस बात को ज्ञाननेत्र वाले लोग ही समझ सकते हैं। दूसरे अज्ञानी जन इस रहस्य को नहीं जान सकते ॥२५॥ राजन् महालक्ष्मी ने त्रयी विद्यारूप सरस्वती को ब्रह्मा के लिए पत्नी रूप में समर्पित किया, रुद्र को वरदायिनी गौरी और वासुदेव को लक्ष्मी दे दी ॥२६॥ इस प्रकार सरस्वती के साथ संयुक्त

स्वरया सह संभूय विरिञ्चोऽण्डमजोजनत्।
बिभेद भगवान् रुद्रस्तद् गौर्या सह वीर्यवान् ॥२७॥
अण्डमध्ये प्रधानादि कार्यजातमभून्नृप।
महाभूतात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥२८॥
पुपोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः।
संजहार जगत्सर्वं सह गौर्या महेश्वरः ॥२९॥

होकर ब्रह्माजी ने ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया और परम पराक्रमी भगवान् रुद्र ने गौरी के साथ मिलकर उसका भेदन किया ॥२७॥ राजन्! उस ब्रह्माण्ड में प्रधान (महत्तत्व) आदि कार्यसमूह—पंचमहाभूतात्मक समस्त स्थावर-जंगमरूप जगत् की उत्पत्ति हुई ॥२८॥ फिर लक्ष्मी के साथ भगवान् विष्णु ने संसार का पालन-पोषण किया और प्रलय काल में गौरी के साथ महेश्वर ने उस सम्पूर्ण संसार का संहार किया ॥२९॥ महाराज

महालक्ष्मीर्महाराज सर्वसत्त्वमयीश्वरी ।
निराकार च साकारा सैव नानाभिधानभृत् ॥३०॥
नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नान्येन केनचित् ॥ॐ॥३१॥

महालक्ष्मी ही सर्वसत्वमयी तथा सब तत्वों की अधीश्वरी हैं। वे ही निराकार और साकार रूप में रहकर नाना प्रकार के नाम धारण करती हैं॥३०॥ सगुणवाचक, सत्य, ज्ञान, चित्, महामाया आदि नामान्तरों से इन महालक्ष्मी का निरूपण करना चाहिये। केवल एक नाम (महालक्ष्मीमात्र) से अथवा अन्य प्रत्यक्ष, अनुमान, आदि प्रमाण से उनका वर्णन ही नहीं हो सकता॥३१॥

॥ इति प्राधानिकं रहस्यं सम्पूर्णम् ॥

अथ वैकृतिकं रहस्यम्

ऋषिरुवाच

ॐत्रिगुणा तामसी देवी सात्त्विकी या त्रिधोदिता ।
सा शर्वा चण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीर्यते ॥१॥
योगनिद्रा हरेरुक्ता महाकाली तमोगुणा ।
मधुकैटभनाशार्थं या तुष्टावाम्बुजासनः ॥२॥

ऋषि कहते हैं—हे राजन्! पहले जिन सत्त्वप्रधाना त्रिगुणमयी महालक्ष्मी के तामसी आदि भेद से तीन स्वरूप बतलाए गये, वे ही शर्वा, चण्डिका, दुर्गा, भद्रा और भगवती आदि अनेक नामों से कही जाती हैं॥१॥ तमोगुणमयी महाकाली भगवान् विष्णु की योगनिद्रा कही गई हैं। मधु और कैटभ का नाश करने के लिए ब्रह्माजी ने जिनकी स्तुति की थी, उन्हीं का नाम महाकाली है॥२॥ उनके दस मुख, दस भुजाएं और दस पैर हैं। वे काजल के समान काले

दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा।
विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया ॥३॥
स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपापि भूमिप।
रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियः ॥४॥
खड्गबाणगदाशूलचक्रशङ्खभुशुण्डिभृत्।
परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ ॥५॥

रंग की हैं तथा तीस नेत्रों की विशाल पंक्ति से सुशोभित होती हैं ॥३॥ हे भूमिरक्षक! उनके दांत और दाढ़ें चमकती रहती हैं। यद्यपि उनका रूप भयंकर है, तथापि वे रूप, सौभाग्य, कान्ति एवं महती सम्पदा की अधिष्ठान (प्राप्तिस्थान) हैं ॥४॥ वे अपने हाथों में खड्ग, बाण, शूल, चक्र, शंख, भुशुण्डि, परिघ, धनुष तथा जिससे रक्त चूता रहता है, ऐसा कटा हुआ मस्तक धारण करती हैं ॥५॥ ये महाकाली भगवान् विष्णु की माया हैं। आराधना

एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया।
आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराचरम् ॥६॥
सर्वदेवशरीरेभ्यो याऽऽविर्भूतामितप्रभा।
त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्दिनी ॥७॥
श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला।
रक्तमध्या रक्तपादा नीलजङ्घोरुरुन्मदा ॥८॥

करने पर ये चराचर जगत् को अपने उपासक के आधीन कर लेती हैं ॥६॥ सम्पूर्ण देवताओं के अंगों से जिनका प्रादुर्भाव हुआ था, वे अपरिमित कान्ति से युक्त साक्षात् महालक्ष्मी हैं। उन्हें ही त्रिगुणमयी प्रकृति कहते हैं तथा वे ही महिषासुर का मर्दन करने वाली हैं ॥७॥ उनका मुख गोरा, भुजाएँ श्याम, स्तनमण्डल अत्यन्त श्वेत, कटिभाग और चरण लाल तथा जंघा और पिंडली नीले रंग की हैं। अजेय होने के कारण उनको अपने शौर्य का गर्व है ॥८॥ कटि के आगे का भाग बहुरंगे वस्त्र से आच्छादित होने के कारण

सुचित्रजघना चित्रमाल्याम्बरविभूषणा ।
चित्रानुलेपना कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी ॥९॥
अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती ।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकरक्रमात् ॥१०॥
अक्षमाला च कमलं बाणोऽसिः कुलिशं गदा ।
चक्रं त्रिशूलं परशुः शङ्खो घण्टा च पाशकः ॥११॥

अत्यन्त सुन्दर एवं विचित्र दिखाई देता है। उनकी माला, वस्त्र, आभूषण तथा अङ्गराग सभी विचित्र हैं। वे कान्ति, रूप और सौभाग्य से शोभित हैं ॥९॥ यद्यपि उनकी भुजाएँ असंख्य हैं, तथापि उन्हें अठारह भुजाओं से युक्त मानकर उनकी पूजा करनी चाहिए। अब उनके दाहिनी ओर के निचले हाथों से लेकर बायीं ओर के निचले हाथों तक में क्रमशः जो अस्त्र हैं, उनका वर्णन किया जाता है ॥१०॥ अक्षमाला, कमल, बाण, खड्ग, वज्र, गदा, चक्र, त्रिशूल, फरसा, शंख, घण्टा, पाश, शक्ति, दण्ड, ढाल, धनुष, पानपात्र और

शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं पानपात्रं कमण्डलुः ।
अलंकृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनाम् ॥१२॥
सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप ।
पूजयेत्सर्वलोकानां स देवानां प्रभुर्भवेत् ॥१३॥
गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया ।
साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥१४॥

कमण्डलु—इन आयुधों से उनकी भुजाएं विभूषित हैं। वे कमल के आसन पर विराजमान हैं, सर्वदेवमयी हैं तथा सबकी ईश्वरी हैं। राजन्! जो इन महालक्ष्मीदेवी का पूजन करता है। वह सब लोकों तथा देवताओं का भी स्वामी होता है ॥११-१३॥ जो एकमात्र सत्त्वगुण के आश्रित हो पार्वतीजी के शरीर से प्रकट हुई थीं तथा जिन्होंने शुम्भ नामक दैत्य का संहार किया था, वे साक्षात् सरस्वती कही गई हैं ॥१४॥ पृथ्वीपते! उनकी आठ भुजाएँ

दधौ चाष्टभुजा बाणमुसले शूलचक्रभृत्।
शङ्खं घण्टां लाङ्गलं च कार्मुकं वसुधाधिप ॥१५॥
एषा सम्पूजिता भक्त्या सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति।
निशुम्भमथिनी देवी शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥१६॥
इत्युक्तानि स्वरूपाणि मूर्तीनां तव पार्थिव।
उपासनं जगन्मातुः पृथगासां निशामय ॥१७॥

हैं तथा वे अपने हाथों में क्रमशः बाण, मूसल, शूल, चक्र, शंख, घंटा, हल एवं धनुष धारण करती हैं ॥१५॥ सरस्वती देवी जो निशुम्भ का मर्दन तथा शुम्भासुर का संहार करने वाली हैं, भक्तिपूर्वक पूजित होने पर सर्वज्ञता देती हैं ॥१६॥ राजन्! इस प्रकार तुमसे महाकाली आदि तीनों मूर्तियों के स्वरूप बतलाये, अब जगन्माता महालक्ष्मी की इन महाकाली तथा आदि तीनों मूर्तियों की अलग-अलग उपासना सुनो ॥१७॥ जब महालक्ष्मी की पूजा करनी हो,

महालक्ष्मीर्यदा पूज्या महाकाली सरस्वती।
दक्षिणोत्तरयोः पूज्ये पृष्ठतो मिथुनत्रयम् ॥१८॥
विरञ्चिः स्वरया मध्ये रुद्रो गौर्या च दक्षिणे।
वामे लक्ष्म्या हृषीकेशः पुरतो देवतात्रयम् ॥१९॥
अष्टादशभुजा मध्ये वामे चास्या दशानना।
दक्षिणेऽष्टभुजा लक्ष्मीर्महतीति समर्चयेत् ॥२०॥

तब उन्हें मध्य में स्थापित करके उनके दक्षिण और वाम भाग में क्रमशः महाकाली और सरस्वती का पूजन करना चाहिए और पृष्ठ भाग में तीनों युगल देवताओं की पूजा करनी चाहिए ॥१८॥ महालक्ष्मी के ठीक पीछे मध्य भाग में सरस्वती के साथ ब्रह्मा का पूजन करे। उनके दक्षिण भाग में गौरी के साथ रुद्र की पूजा करे तथा वाम भाग में लक्ष्मी के साथ विष्णु का पूजन करे। महालक्ष्मी आदि तीनों देवियों के सामने निम्नांकित तीन देवियों की भी पूजा करनी चाहिए ॥१९॥ मध्यस्थ महालक्ष्मी के आगे मध्य भाग में

अष्टादशभुजा चैषा यदा पूज्या नराधिप।
दशानना चाष्टभुजा दक्षिणोत्तरयोस्तदा ॥२१॥
कालमृत्यू च सम्पूज्यौ सर्वारिष्टप्रशान्तये।
यदा चाष्टभुजा पूज्या शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥२२॥

अठारह भुजाओं वाली महालक्ष्मी का पूजन करे। उनके वाम भाग में दस मुखोंवाली महाकाली तथा दक्षिण में आठ भुजाओंवाली महासरस्वती का पूजन करे ॥२०॥ राजन्! जब केवल अठारह भुजाओं वाली महालक्ष्मी का अथवा दशमुखी काली या अष्टभुजा सरस्वती का पूजन करना हो, तब सब अरिष्टों की शान्ति के लिए इनके दक्षिण भाग में काल की और वाम भाग में मृत्यु की भी भलीभांति पूजा करनी चाहिए। जब शुम्भासुर का संहार करनेवाली अष्टभुजा देवी की पूजा करनी हो, तब उनके साथ उनकी नौ शक्तियों का और दक्षिण भाग में रुद्र एवं वाम

नवास्याः शक्तयः पूज्यास्तदा रुद्रविनायकौ।
नमो देव्या इति स्तोत्रैर्महालक्ष्मीं समर्चयेत् ॥२३॥
अवतारत्रयार्चायां स्तोत्रमन्त्रास्तदाश्रयाः।
अष्टादशभुजा चैषा पूज्या महिषमर्दिनी ॥२४॥
महालक्ष्मीर्महाकाली सैव प्रोक्ता सरस्वती।
ईश्वरी पुण्यपापानां सर्वलोकमहेश्वरी ॥२५॥

भाग में गणेशजी का भी पूजन करना चाहिए (ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री, शिवदूती तथा चामुण्डी—ये नौ शक्तियां हैं)। 'नमोदेव्यै···' इस स्तोत्र से महालक्ष्मी की पूजा करनी चाहिए ॥२१-२३॥ तथा उनके तीन अवतारों की पूजा के समय उनके चरित्रों में जो स्तोत्र और मंत्र आये हैं, उन्हीं का उपयोग करना चाहिए। अठारह भुजाओं वाली महिषासुरमर्दिनी महालक्ष्मी ही विशेषरूप से पूजनीय हैं, क्योंकि वे ही महालक्ष्मी,

महिषान्तकरी येन पूजिता स जगत्प्रभुः ।
पूजयेज्जगतां धात्रीं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ॥२६॥
अर्घ्यादिभिरलंकारैर्गन्धपुष्पैस्तथाक्षतैः ।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥२७॥
रुधिराक्तेन बलिना मांसेन सुरया नृप ।
(बलिमांसादिपूजेयं विप्रवर्ज्या मयेरिता ॥

महाकाली तथा महासरस्वती कहलाती हैं। वे ही पुण्य-पापों की अधीश्वरी तथा सम्पूर्ण लोकों की स्वामिनी हैं ॥२४-२५॥

जिसने महिषासुर का अन्त करने वाली महालक्ष्मी की भक्तिपूर्वक आराधना की है, वही संसार का स्वामी है। अतः जगत् को धारण करने वाली भक्तवत्सला भगवती चंडिका की अवश्य पूजा करनी चाहिए ॥२६॥ अर्घ्य आदि से, आभूषणों से, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप तथा नाना प्रकार के भक्ष्य

तेषां किल सुरामांसैर्नोक्ता पूजा नृप क्वचित् ।)
प्रणामाचमनीयेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥२८॥
सकर्पूरैश्च ताम्बूलैर्भक्तिभावसमन्वितैः ।
वामभागेऽग्रतो देव्याश्छिन्नशीर्षं महासुरम् ॥२९॥
पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया ।
दक्षिणे पुरतः सिंहं समग्रं धर्ममीश्वरम् ॥३०॥

पदार्थों से युक्त नैवेद्यों से, रक्त सिंचित बलि से, मांस से तथा मदिरा से भी देवी का पूजन होता है।* राजन्! (बलि और मांस आदि में की जाने वाली पूजा ब्राह्मणों को छोड़ कर बतायी गयी है। उनके लिए मांस और मदिरा से कहीं भी पूजा का विधान नहीं है।) प्रणाम, आचमन के योग्य जल, सुगन्धित चन्दन, कपूर, तथा ताम्बूल आदि सामग्रियों को भक्ति-भाव से

* मांस, मदिरा पूजन का विधान इनका सेवन करनेवालों के लिए है, सात्त्विक लोगों के लिए नहीं।

वाहनं पूजयेद्देव्या धृतं येन चराचरम्।
कुर्याच्च स्तवनं धीमांस्तस्या एकाग्रमानसः ॥३१॥
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुवीत चरितैरिमैः।
एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह ॥३२॥
चरितार्धं तु न जपेज्जपञ्छिद्रमवाप्नुयात्।
प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥३३॥

निवेदन करके देवी की पूजा करनी चाहिए। देवी के सामने वाम भाग में कटे मस्तक वाले महादैत्य महिषासुर का पूजन करना चाहिए, जिसने भगवती के साथ सायुज्य प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार देवी के सामने दक्षिण भाग में उनके वाहन सिंह का पूजन करना चाहिए, जो सम्पूर्ण धर्म का प्रतीक एवं षड्विध ऐश्वर्य से युक्त है। उसी ने इस चराचर जगत् को धारण कर रक्खा है। तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुष एकाग्रचित्त हो देवी की स्तुति करे। फिर

क्षमापयेज्जगद्धात्रीं मुहुर्मुहुरतन्द्रितः।
प्रतिश्लोकं च जुहुयात्पायसं तिलसर्पिषा ॥३४॥
जुहुयात्स्तोत्रमन्त्रैर्वा चण्डिकायै शुभं हविः।
भूयो नामपदैर्देवीं पूजयेत्सुसमाहितः ॥३५॥

हाथ जोड़कर तीनों पूर्वोक्त चरित्रों द्वारा भगवती की स्तुति करे। यदि कोई एक ही चरित्र से स्तुति करना चाहे तो केवल मध्यम चरित्र के पाठ से कर ले, किन्तु प्रथम और उत्तर चरित्रों में से एक का पाठ न करे। आधे चरित्र का भी पाठ करना मना है। जो आधे चरित्र का पाठ करता है, उसका पाठ सफल नहीं होता। पाठ समाप्ति के बाद साधक प्रदक्षिणा और नमस्कार करे तथा आलस्य छोड़कर जगदम्बा के उद्देश्य से मस्तक पर हाथ जोड़ और उनसे बारम्बार त्रुटियों या अपराधों के लिए क्षमा-प्रार्थना करे। सप्तशती का प्रत्येक श्लोक मन्त्र रूप है। उससे तिल और घृत मिली हुई खीर की आहुति दे ॥२७-३४॥ अथवा सप्तशती में जो स्तोत्र आये हैं, उन्हीं के मन्त्रों

प्रयतः प्राञ्जलिः प्रह्वः प्रणम्यारोप्य चात्मनि।
सुचिरं भावयेदीशां चण्डिकां तन्मयो भवेत् ॥३६॥
एवं यः पूजयेद्भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरीम्।
भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ॥३७॥

से चण्डिका के लिए पवित्र हविष्य का हवन करे। होम के बाद एकाग्रचित्त हो महालक्ष्मी देवी के नाम-मन्त्रों का उच्चारण करते हुए पुनः उनकी पूजा करे ॥३५॥ तत्पश्चात् मन और इंद्रियों को वश में रखते हुए हाथ जोड़ विनीत भाव से देवी को प्रणाम करे और अन्तःकरण में स्थापित करके उन सर्वेश्वरी चंडिका देवी का देर तक स्मरण करे। स्मरण करते-करते उन्हीं में तन्मय हो जाय ॥३६॥ इस प्रकार जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिपूर्वक जगदम्बा का पूजन करता है, वह मनोवांछित भोगों को भोगकर अंत में देवी का सायुज्य प्राप्त करता है ॥३७॥ जो भक्तवत्सला चंडी का प्रतिदिन पूजन

यो न पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम्।
भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत्परमेश्वरी ॥३८॥
तस्मात्पूजय भूपाल सर्वलोकमहेश्वरीम्।
यथोक्तेन विधानेन चण्डिकां सुखमाप्स्यसि ॥३९॥

नहीं करता, भगवती परमेश्वरी उसके पुण्यों को जलाकर भस्म कर देती हैं ॥३८॥ इसलिये राजन्! तुम सर्वलोक-महेश्वरी चण्डिका का शास्त्रोक्त विधि से पूजन करो। उससे तुम्हें सुख मिलेगा ॥३९॥

॥ इति वैकृतिकं रहस्यं सम्पूर्णम् ॥

अथ मूर्तिरहस्यम्

ऋषिरुवाच

ॐ नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा ।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥१॥
कनकोत्तमकान्तिः सा सुकान्तिकनकाम्बरा ।
देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तमभूषणा ॥२॥

ऋषि कहते हैं—राजन् ! नन्दा नाम की देवी जो नन्द से उत्पन्न होने वाली हैं, उनकी यदि भक्तिपूर्वक स्तुति और पूजा की जाय तो वे तीनों लोकों को उपासक के अधीन कर देती हैं ॥१॥ उनके श्रीअंगों की कान्ति स्वर्ण के समान उत्तम है। वे सुनहरे रंग के सुन्दर वस्त्र धारण करती हैं ॥२॥ उनकी चार भुजाएँ कमल, अंकुश, पाश और शंख से शोभायमान हैं। वे इन्दिरा,

कमलाङ्कुशपाशाब्जैरलंकृतचतुर्भुजा ।
इन्दिरा कमला लक्ष्मीः सा श्री रक्ताम्बुजासना ॥३॥
या रक्तदन्तिका नाम देवी प्रोक्ता मयानघ ।
तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु सर्वभयापहम् ॥४॥
रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तसर्वाङ्गभूषणा ।
रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तकेशातिभीषणा ॥५॥

कमला, लक्ष्मी, श्री तथा रक्ताम्बुजासना (सुवर्ण कमल के आसन पर विराजमान) आदि नामों से पुकारी जाती हैं ॥३॥ हे निष्पाप ! पहले मैंने रक्तदन्तिका नाम से जिन देवी का परिचय दिया है, अब उनके स्वरूप का वर्णन करूंगा, सुनो वह सब इस प्रकार के भयों को दूर करने वाली हैं ॥४॥ वे लाल रंग के वस्त्र पहनती हैं। उनके शरीर का रंग भी लाल ही है और अंगों के समस्त आभूषण भी लाल रंग के हैं। उनके अस्त्र-शस्त्र, नेत्र, सिर के बाल, तीखे नख

रक्ततीक्ष्णनखा रक्तदशना रक्तदन्तिका।
पतिं नारीवानुरक्ता देवी भक्तं भजेज्जनम् ॥६॥
वसुधैव विशाला सा सुमेरुयुगलस्तनी।
दीर्घौ लम्बावतिस्थूलौ तावतीव मनोहरौ ॥७॥
कर्कशावतिकान्तौ तौ सर्वानन्दपयोनिधी।
भक्तान् सम्पाययेद्देवी सर्वकामदुघौ स्तनौ ॥८॥

और दांत सभी लाल रंग के हैं, इसलिए वे रक्तदन्तिका कहलाती और अत्यन्त भयानक दिखाई देती हैं। जैसे स्त्री पति के प्रति अनुराग रखती है, उसी प्रकार देवी अपने भक्त पर (माता की भांति स्नेह) रखते हुए उनकी सेवा करती हैं ॥५-६॥ देवी रक्तदन्तिका का आकार वसुधा की भांति विशाल है, उनके दोनों स्तन सुमेरु पर्वत के समान हैं। वे लम्बे, चौड़े, अत्यन्त स्थूल एवं बहुत ही मनोहर हैं। कठोर होते हुए भी अत्यन्त कमनीय हैं तथा पूर्ण आनन्द

खड्गं पात्रं च मुसलं लाङ्गलं च बिभर्ति सा।
आख्याता रक्तचामुण्डा देवी योगेश्वरीति च ॥९॥
अनया व्याप्तमखिलं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
इमां यः पूजयेद्भक्तया स व्याप्नोति चराचरम् ॥१०॥
(भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात्)।

के समुद्र हैं। सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति करने वाले वे दोनों स्तन देवी अपने भक्तों को पिलाती हैं ॥७-८॥ वे अपनी चार भुजाओं में खड्ग, पानपात्र, मूसल और हल धारण करती हैं, ये ही रक्त चामुण्डा और योगेश्वरी देवी कहलाती हैं ॥९॥ इनके द्वारा सारा चराचर जगत् व्याप्त है। जो इन रक्तदन्तिका देवी का भक्ति पूर्वक पूजन करता है, वह भी चराचर जगत् में (उत्कट यश के द्वारा) व्याप्त होता है ॥१०॥ यथेष्ट भोगों को भोग कर अन्त में देवी के साथ सायुज्य प्राप्त कर लेता है। जो प्रतिदिन रक्तदन्तिका देवी के शरीर की यह स्तुति करता है, उसकी

अधीते य इमं नित्यं रक्तदन्त्या वपुःस्तवम् ।
तं सा परिचरेद्देवी पतिं प्रियमिवाङ्गना ॥११॥
शाकम्भरी नीलवर्णा नीलोत्पलविलोचना ।
गम्भीरनाभिस्त्रिवलीविभूषिततनूदरी ॥१२॥
सुकर्कशसमोत्तुङ्गवृत्तपीनघनस्तनी ।
मुष्टिं शिलीमुखापूर्णं कमलं कमलालया ॥१३॥

वे देवी प्रेमपूर्वक संरक्षण रूप सेवा करती हैं—ठीक उसी तरह, जैसे पतिव्रता नारी अपने प्रियतम पति की परिचर्या करती है ॥११॥ शाकम्भरी देवी के शरीर की कान्ति नीले रंग की है। उसके लोचन नील कमल के समान हैं, नाभि गहरी है तथा त्रिवली से विभूषित उदर (मध्य भाग) सूक्ष्म है ॥१२॥ उनके दोनों स्तन अत्यन्त कठोर, सब ओर से बराबर ऊंचे, गोल, स्थूल तथा परस्पर सटे हुए हैं। वे परमेश्वरी कमल में

पुष्पपल्लवमूलादिफलाढ्यं शाकसञ्चयम् ।
काम्यानन्तरसैर्युतं क्षुत्तृण्मृत्युभयापहम् ॥१४॥
कार्मुकं च स्फुरत्कान्ति बिभ्रती परमेश्वरी ।
शाकम्भरी शताक्षी सा सैव दुर्गा प्रकीर्तिता ॥१५॥
विशोका दुष्टदमनी शमनी दुरितापदाम् ।
उमा गौरी सती चण्डी कालिका सा च पार्वती ॥१६॥

निवास करने वाली हैं और हाथों में बाणों से भरी मुष्टि, कमल, शाक-समूह तथा प्रकाशमान धनुष धारण करती हैं। यह शाक-समूह अनन्त मनोवांछित रसों से युक्त तथा भूख, प्यास और मृत्यु के भय को नष्ट करने वाली तथा फूल, पल्लव, मूल आदि एवं फलों से सम्पन्न है। वे शाकम्भरी तथा शताक्षी दुर्गा कही गयी हैं ॥१३-१५॥ वे शोक से रहित, दुष्टों का दमन करनेवाली तथा पाप और विपत्ति को शान्त करनेवाली हैं। उमा, गौरी, सती, चण्डी, कालिका और पार्वती भी वे ही हैं ॥१६॥ जो मनुष्य शाकम्भरी देवी की स्तुति

शाकम्भरीं स्तुवन् ध्यायञ्जपन् सम्पूजयन्नमन् ।
अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्नपानामृतं फलम् ॥१७॥
भीमापि नीलवर्णा सा दंष्ट्रादशनभासुरा ।
विशाललोचना नारी वृत्तपीनपयोधरा ॥१८॥
चन्द्रहासं च डमरुं शिरः पात्रं च बिभ्रती ।
एकवीरा कालरात्रिः सैवोक्ता कामदा स्तुता ॥१९॥

ध्यान, जप, पूजा और वन्दना करता है, वह शीघ्र ही अन्न, पान एवं अमृत-रूप अक्षय फल का भागी होता है ॥१७॥ भीमा देवी का वर्ण भी नील ही है। उनके दाढ़ और दांत चमकते रहते हैं। उनके नेत्र बड़े-बड़े हैं, स्वरूप स्त्री का है, स्तन गोल-गोल और स्थूल हैं। वे अपने हाथों में चन्द्रहास नामक खड्ग, डमरू, मस्तक और पानपात्र धारण करती हैं। वे ही एकवीरा, काल-रात्रि तथा कामदा कहलाती हैं और इन नामों से प्रशंसित होती हैं ॥१८-१९॥ भ्रामरी देवी की कांति अनेक रंग की है। वे अपने तेजोमंडल के कारण दुर्धर्ष

तेजोमण्डलदुर्धर्षा भ्रामरी चित्रकान्तिभृत् ।
चित्रानुलेपना देवी चित्राभरणभूषिता ॥२०॥
चित्रभ्रमरपाणिः सा महामारीति गीयते ।
इत्येता मूर्तयो देव्या याः ख्याता वसुधाधिप ॥२१॥
जगन्मातुश्चण्डिकायाः कीर्तिताः कामधेनवः ।
इदं रहस्यं परमं न वाच्यं कस्यचित्त्वया ॥२२॥

दिखाई देती हैं। उनका अंगराग भी अनेक रंग का है तथा वे चित्र-विचित्र, आभूषणों से विभूषित हैं ॥२०॥ चित्रभ्रमण, पाणि और महामारी आदि नामों से उनकी महिमा का गान किया जाता है। राजन्! जगन्माता चंडिका देवी की ये मूर्तियां बतलाई हैं ॥२१॥ जो कीर्तन करने पर कामधेनु के समान सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करती हैं। यह परम गोपनीय रहस्य है। इसे तुम्हें दूसरे किसी को बतलाना नहीं चाहिये ॥२२॥ दिव्य मूर्तियों का यह वर्णन मनोवांछित फल देने वाला है, इसलिए पूर्ण प्रयत्न करके तुम निरन्तर देवी

व्याख्यानं ,दिव्यमूर्तीनामभीष्टफलदायकम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन देवीं जप निरन्तरम् ॥२३॥
सप्तजन्मार्जितैर्घोरैर्ब्रह्महत्यासमैरपि ।
पाठमात्रेण मन्त्राणां मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥२४॥
देव्या ध्यानं मयाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं महत् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदम् ॥२५॥
(एतस्यास्त्वं प्रसादेन सर्वमान्यो भविष्यसि ।

के जप (आराधना) में लगे रहो ॥२३॥ सप्तशती के मन्त्रों के पाठमात्र से मनुष्य सात जन्मों में उपार्जित ब्रह्महत्या सदृश घोर पातकों एवं समस्त कल्मषों से मुक्त हो जाता है ॥२४॥ इसलिए मैंने पूर्ण प्रयत्न करके देवी के गोपनीय से भी अत्यन्त गोपनीय ध्यान का वर्णन किया है, जो सब प्रकार के मनोवांछित फलों को देने वाला है ॥२५॥ (उनके प्रसाद से तुम सर्वमान्य हो

सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत् ।
अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम् ॥)

जाओगे। देवी सब रूपमयी हैं तथा सम्पूर्ण जगत् देवीमय है। अतः मैं उन विश्वरूपा परमेश्वरी को नमस्कार करता हूं ॥)

॥ इति मूर्तिरहस्यं सम्पूर्णम् ॥

॥ अथ सरस्वतीकवचं प्रारभ्यते ॥

ब्रह्मोवाच। शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं सर्व कामदम्। श्रुतिसारंश्रुतिसुखं श्रुत्युक्तम् श्रुतिपूजितम् ॥१॥ उक्तंकृष्णेनगोलोके मह्यं वृन्दावने वने। रासेश्वरेण विभुना रासेन रासमण्डले ॥२॥ अतीव गोपनीयं च कल्पवृक्षसमं परम्। अश्रुताद्भुत मन्त्राणां समूहंश्च समन्वितम् ॥३॥ यद्धृत्वा पठनाद् ब्रह्मन् बुद्धिमांश्च बृहस्पतिः। यद्धृत्वा भगवांश्छुक्रः सर्वदैत्येषु पूजितः ॥४॥ पठनाद्धारणाद् वाग्मी कवीन्द्रो वाल्मीकिमुनिः ॥५॥ स्वायम्भुवो मनुश्चैव यद्धृत्वा सर्वपूजितः। कणादो गोतमः कण्वः पाणिनिः शाक-

टायनः ॥६॥ ग्रस्थं चकार यद्धृत्वा दक्ष कात्यायनः स्वयम्। धृत्वा वेदविभागं च पुराणान्यखिलानि च ॥७॥ चकार लीलामात्रेण कृष्णः द्वैपायनः स्वयम्। शातातपश्च संवर्तो वसिष्ठश्च पाराशरः ॥८॥ यद्धृत्वा पाठनाद्ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार स। ऋष्यशृंगो भारद्वाजश्चास्तीको देवलस्तथा ॥९॥ जैगीषव्योऽथ जाबालिर्यद्धृत्वा सर्वपूजितः। कवचस्याय विप्रेन्द्र ऋषिरेव प्रजापतिः ॥१०॥ स्वयं बृहस्पतिः छन्दो देवो रासेश्वरः प्रभुः। सर्वतत्त्वपरिज्ञानं सर्वार्थसाधनेषु च ॥११॥ कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः। ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः ॥१२॥ श्री वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदाऽवतु। ॐ सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रं पातु निरन्तम् ॥१३॥ ॐ श्रीं ह्रीं

भारत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वतोऽवतु ॥१४॥ ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा ओष्ठं सदाऽवतु। ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्मयै स्वाहेति दन्तपंक्तिं सदाऽवतु ॥१५॥ ओमित्येकाक्षरो मन्त्रो ममकण्ठं सदाऽवतु। ॐ श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कन्धं मे श्रीं सदाऽवतु ॥१६॥ श्री विद्याधिष्ठातृ-देव्यै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु। ॐ ह्रीं विद्यास्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाय ॥१७॥ ॐ ह्रीं ह्रीं वाण्यै स्वाहेति मम पृष्ठं सदाऽवतु। ॐ सवर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदाऽवतु ॥१८॥ ॐ समाधिष्ठातृदेव्यै सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु। ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदाऽवतु ॥१९॥ ॐ ह्रीं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाग्नि दिशि रक्षतु। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै

स्वाहा ॥२०॥ सततं मंत्रराजोयं दक्षिणे मां सदाऽवतु। ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्यां मे सदाऽवतु ॥२१॥ कविजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वरुणोऽवतु ॥ ॐ सदाम्बिकायै स्वाहा वायव्ये मां सदाऽवतु ॥२२॥ ॐ गद्यपद्यवासिन्यै स्वाहा मामुत्तरेऽवतु ॥ ॐ सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहा ईशान्यां सदाऽवतु ॥२३॥ ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा वायव्ये सदाऽवतु ॥ ॐ ऐं ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहेशान्या सदाऽवतु ॥२४॥ ऐं ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु ॥ इति ते कथितं विप्रसर्वमन्त्रार्थविग्रहम् ॥२५॥ इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपिणम् ॥२६॥ पुराश्रुतं धर्मवक्त्रात् पर्वते गन्धमादने ॥ तव स्नेहान्मयाख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥२७॥ गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्वस्त्रालंकार-

चन्दनैः । प्रणमेद्दण्डवद् भूमौ कवचं धारयेत् सुधीः ॥२८॥ पंचलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत् ॥ यदि स्यात् सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत् ॥२९॥ महावाग्मी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्य-विजयी भवेत् ॥ शक्नोति सर्वं जेतुं स कवचास्यास्य प्रसादतः ॥३०॥ इति ते कण्वशाखोक्तं कथितं कवचं मुने ॥ स्तोत्रं पूजा-विधानं च ध्यानं च वदनं तथा ॥३१॥

॥ अथ शतचण्डी विधिः ॥

शङ्करस्य भवान्या वा प्रासादनिकटे शुभम् । मण्डपं द्वार-वेद्याढ्यं कुर्यात् सध्वजतोरणम् ॥१॥ कुण्डत्रयं प्रकुर्वीत प्रतीच्यां मध्यतोऽपि वा । स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा वृणुयादृश्यवाडवान् ॥२॥ जितेन्द्रियान्सदाचारान् कुलीनान्सत्यवादिनः । व्युत्पन्नां-श्चण्डिकापाठस्तांल्लज्जादयावतः ॥३॥ मधुपर्कविधानेन स्वर्ण-वस्त्रादिदानतः । जपार्थमानसं मालां दद्यात्तेभ्योऽपि भोजनं ॥४॥ ते हविष्यान्नमश्नन्तो मन्त्रार्थगतमानसाः । भूमौ शयानाः प्रत्येकं जपेयुश्चण्डिकास्तवम् ॥५॥ मार्कण्डेयपुराणोक्तं दशकृत्वः सचेतसः । नवार्णश्चंडिकामन्त्रं जपेयुश्चायुतं पृथक् ॥६॥

पृथक्सम्पुटीकरणादिति शेषः प्रत्येकं ब्राह्मणैस्तज्जः कार्यः अष्टमीनवाचतुर्दशीपौर्णमासीषु यथाशतावृत्तिसमाप्तिर्भवति तथाऽऽरम्भः कर्तव्यः इतिसाम्प्रदायिकाः। यजमानः पूजयेच्च कन्याया नवकं शुभम्। द्विवर्षाद्या दशाब्दान्ता कुमारीः परिपूजयेत ॥१॥ तासां क्रमेण नामानि——कुमारी १ त्रिमूर्ति २ कल्याणि ३ रोहिणी ४ कालिका ५ शाम्भवी ६ दुर्गा ७ चंडिका ८ सुभद्रा ९ इति नाममन्त्रैस्तासां पूजा कार्या तत्र हीनाधिकांगी कुष्ठव्रणयुता अन्धा काणा कुरूपा केकरी कूबरा लोमयुग्देहा दासीजा रोहिणीत्येवमाद्यावर्ज्याः ॥ विप्रां सर्वेष्टसंसिद्ध्यै यशसे क्षत्रियोद्भवम्। वैश्यजां धनलाभाय पुत्राप्त्यै शूद्रजां यजेत्। गन्ध पुष्पधूपदीपभक्ष्यभोज्यैर्यथाशक्ति वस्त्राभरणैश्च पूजयेत।

द्विवर्षा सा कुमार्युक्ता त्रिमूर्तिर्हायनान्त्रिका। चतुरब्दातु कल्याणी पंचवर्षा तु रोहिणी। षडब्दा कालिका प्रोक्ता चण्डिका सप्तहायना। अष्टवर्षा शाम्भवी स्याद् दुर्गा तु नवहायना॥ सुभद्रा दशवर्षोक्ता नाममन्त्रै प्रपूजयेत्। तासामावाहने मन्त्रः प्रोच्यते शङ्करादितः॥ मंत्राक्षरमयींलक्ष्मीं मातृणां रूपधारिणीम्। नवदुर्गात्मिकां साक्षात्कन्यामावाहयाम्यहम्। कुमारिकादिकन्यानां पूजामन्त्रान्प्रुवेऽधुना। जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये सर्वशक्ति स्वरूपिणी॥ पूजां गृहाण कौमारी जगन्मातर्नमोस्तु ते। त्रिपुरां त्रिपुराधारां त्रिवर्षा ज्ञानरूपिणीम्। त्रैलोक्यवन्दितां देवीं त्रिमूर्ति पूजयाम्यहम्॥ अणिमादि गुणाधारामकराद्यक्षरात्मिकाम्। अनन्तशक्तिकां लक्ष्मीं रोहिणी पूजयाम्यहम्॥ कामाचारां शुभां कान्तां

कालचक्रस्वरूपिणीम् । कामदां करुणोदारां कालिकां पूजयाम्यहम् ॥ चण्डवीरां चण्डमार्या चण्डमुण्डप्रभंजनीम् । पूजयामि सदा देवीं चण्डिकां चण्डिविक्रमाम् ॥ सदानन्द करीं शान्तां सर्वदेवनमस्कृताम् । सर्वभूतात्मिकां लक्ष्मीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम् ॥ दुर्गमे दुस्तरे कार्ये भवदुःखविनाशिनीम् ॥ सुन्दरीं स्वर्णवर्णाभां दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥ सुन्दरीं स्वर्णवर्णाभां सुखसौभाग्यदायिनीम् । सुभद्रजननीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम् ॥ एतैर्मन्त्रैः पुराणोक्तैस्तांतां कन्यां समर्चयेत् । (इतिपूजनं कुमारिकाणाम्) ॥ वेद्यां विरचिते रम्ये सर्वतोभद्रमण्डले । घटं संस्थाप्य विधिना तत्रावाह्याचर्येच्छिवाम् ॥ तदग्रे कन्यकश्चापि पूजयेद् ब्राह्मणानपि । उपचारैस्तु विविधैर्नवार्णावरणान्यपि ॥ ओंकारः प्रथमं

पीठं पूर्णपीठमतः परम् । तृतीयं कामपीठं च पूजयेत्सम्प्रदायतः ॥ पूर्वादिदिक्षु पीठस्य गणेशादिचतुष्टयम् ॥ गणेशक्षेत्रपालौ च पादुके बटुकास्त्रयः ॥ आग्नेय्यादिचतुर्दिक्षु पूज्यं देवाचतुष्टयम् । जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता ॥ पूर्वोक्तयन्त्रपूर्वं कोणे सरस्वती सहितो ब्रह्मा श्री सहितो विष्णुर्नैऋत्यामुमया सहितः शिवो वायव्यां षट् कोणचक्रमध्यस्थमध्यबीजे महालक्ष्मी ह्रीं महालक्ष्मी ऐं महासरस्वती दक्षिणवामयोः उदक् सिंहो दक्षिणे महिषः षट्कोणेषु नन्दजारई दन्तिका शाकम्भरी दुर्गाभीमाभ्रामर्यः सबिन्दुनामाद्यवर्णताराद्यश्चासां नाममन्त्रपूजादौ तारः प्रणवः अष्टपत्रेषु ब्रह्माणी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही नारसिंही ऐन्द्री चामुण्डा उक्तरीत्या नाममन्त्रैः पूज्याः ततो

विष्णुमायादिचतुर्विंशतिदेवताः प्रागादिक्रमेण केसरेषु पूज्याः। प्रतिपत्रंच केसरत्रयम्। ताश्चाविष्णुमाया १ चेतना २ बुद्धिः ३ निद्रा ४ क्षुधा ५ छाया ६ शक्तिः ७ तृष्णा ८ क्षान्तिः ९ जाति १० लज्जा ११ शांतिः १२ श्रद्धा १३ कान्तिः १४ लक्ष्मी १५ धृतिः १६ वृत्तिः १७ स्मृतिः १८ दया १९ तुष्टिः २० पुष्टिः २१ मातृ २२ भ्रान्तिः २३ चिति २४ रूपा एतावत्यः सप्तशतीस्वे पंचमेऽध्याय आसां चतुर्विंशतीनां न पाठ इति नां भ्रमितव्यम् कात्यायनीतन्त्रविरोधात्। नालमूले तु सम्पूज्यः माधवादिचतुष्टयम् आधारः कूर्मशेषौ च चतुर्थीपृथिवीनृप। गृहकोणेषु गणेशः क्षेत्रपालो बटुको योगिन्यः प्रागादि दिक्षुइन्द्राद्याश्चेति एवं चतुर्दिनं कुर्यात्तत्रप्रथमेऽह्नि एकावृत्तिद्वितीये

द्वितीय तिस्त्रश्चतुर्थे चतस्र इतिपंचमे होमः होमद्रव्याणि पायसान्नेस्त्रिमध्वाक्तैदक्षारम्भा भलादिभिः मातुलुङ्गै रिक्षुदण्डैर्नारिकेलयुतैस्तिलैः। जातीफलैरन्यैर्मधुरवस्तुभिः॥ इति॥ सप्तशत्या दशावृत्या प्रतिमंत्रं हुतञ्चरेत्। अयुतं च नवार्णेन स्थपितेऽग्नौ विधानतः। कृत्वा वरणं देवानां होमं तन्नाममंत्रतः कृत्वा पूर्णाहुतिं सम्यग्देवमग्निं विसृज्य च अभिषिचेच्च यष्टां विप्रौघः कलशादकैः निष्कं सुवर्णमथवा प्रत्येकं दक्षिणां दिशेत्। भोजयेच्च शतं विप्रान् भक्ष्यभोज्यैः पृथग्विधैः। तेभ्योऽपि दक्षिणां दत्वा गृह्णीयादाशिषस्तथा। एवं कृते जगद्वाश्यं सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः॥ इति शतचण्डी-विधिः॥

अथ काम्यप्रयोगविधिः

ॐ गणाधिपतये नमः । अथ प्रयोगान्तराणि कात्यायनीतन्त्रोक्तानि प्रतिश्लोकमाद्यन्तयोः प्रणवं जपेन्मन्त्रसिद्धिः ॥१॥ अग्रे सर्वत्र श्लोकपद मन्त्रोपलक्षणम् सप्रणवमनुलोमव्याहृतित्रयमादौ अन्ते तु विलोमं तदित्येवं प्रतिश्लोकं कृत्वा शतावृत्तिपाठेऽतिशीघ्रं सिद्धः ॥२॥ प्रतिश्लोकमादौ जातवेदस इत्यृचं पठेत्सर्वकार्यं सिद्धिः ॥३॥ अपमृत्युवारणाय त्र्यम्बकमन्त्रं पठेत् । आदावन्ते च शमित्यर्थः प्रतिश्लोकं तन्मन्त्र जप इत्यन्यत्र ॥४॥ प्रतिश्लोकं शूलेन पाहिनो देवीति पाठादपमृत्युवारणम् ॥५॥ प्रतिश्लोकं शरणागत दीनार्तेति श्लोकं पठेत्सर्वकार्यसिद्धिः ॥६॥ प्रतिश्लोकं करोतु सा नः शुभेत्यर्द्धं पठेत्सर्वकार्यसिद्धिः ॥७॥ स्वाभीष्टवर प्राप्तये एव देव्या वरं लब्धवेति श्लोकं पठेत् ॥८॥ सर्वापत्तिवारणाय प्रतिश्लोकं दुर्गे स्मृतेति पठेत् । अस्य केवलस्यापि श्लोकस्य कार्यानुसा रण लक्षमयुतं सहस्रं शतं वा जपः ॥९॥ सर्वाबाधेत्यस्य

लक्षजपे प्रति श्लोकपाठे वा श्लोकोक्तं फलम् ॥१०॥ इत्थं यदा यदा बाधेति श्लोकजपे महामारीशान्ति ॥११॥ ततो वह्नं नृपो राज्यमितिमन्त्रत्रये जपे पुनः स्वराज्यलाभः ॥१२॥ हिनस्ति दैत्यतेजांसीत्यनेन सदीपबलिदाने घण्टाबन्धने च बालग्रहशान्तिः ॥१३॥ आद्यवृत्तिमनुलोमेन पठित्वा ततो विपरीतक्रमेण द्वितीयामनुलोमेन तृतीयामित्येवमावृत्तित्रयेण शीघ्रकार्यसिद्धिः ॥१४॥ सर्वापत्तिवारणाय दुर्गे स्मृतेत्यर्द्धततो यदेति यच्च दूरके इत्यृचं तदंते दारिद्रथ दुखेत्यर्द्धमेव कार्यानुसारेण लक्षमयुतं सहस्रं शतं वा जपः ॥१५॥ कांसोस्मीत्यृचं प्रतिश्लोकं पठेल्लक्ष्मीप्राप्तिः ॥१६॥ प्रतिश्लोकमनृणा अस्मिन्नित्यृचंपठेदृणपरिहारः ॥१७॥ मरणार्थमेवमुक्त्वा समुत्पत्येति श्लोकं प्रतिश्लोकं पठेन्मारणोक्तवृत्तिभिः फलसिद्धिः ॥१८॥ ज्ञानिनामपि चेतांसि इति श्लोकजपमात्रेण सद्यो मोहनमित्यनुभवसिद्धम् प्रतिश्लोक तच्छ्लोकपाठे त्ववश्यम् ॥१९॥ रोगानशेषानिति श्लोकस्य प्रतिश्लोकपाठे सकलरोगनाशः तन्मात्रजपेऽपि सः ॥२०॥ इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरेतिश्लोकस्य प्रतिश्लोकं पाठपृथग्जपे वा विद्या प्राप्तिर्वाग्वैकृतनाशश्च ॥२१॥ भगवत्या कृतं सर्वमित्यादि द्वादशो-

त्तरशः ताक्षरो मन्त्रः सर्वकामदः सर्वापत्तिवारणश्च ॥२२॥ देवी प्रसन्नार्तिहरे इति श्लोकस्य यथाकार्यं लक्षायुतसहस्र-शतान्यतमसंख्यया जपे प्रतिश्लोकं पाठे वा सर्वापत्निवृत्तिः सर्वकामाप्ति एषु प्रयोगेषु प्रतिश्लोकं दीपाग्रे केवलमेव नमस्करणेऽतिशीघ्रं सिद्धिः। प्रतिश्लोकं कामबीजसम्पुटितस्य एकचत्वारिंशद्दिनं विरावृत्तौ सर्वकामसिद्धिः ॥२३॥ एकविंशतिदिनपर्यन्त मुक्तरीत्या प्रत्यहं द्वादशवृत्तौ वशीकरणम् ॥२४॥ मायाबीजसम्पुटितस्य फट् पल्लवसहितस्य सप्तदिनपर्यन्तं त्रयोदशावृत्तावुच्चाटनसिद्धिः ॥२५॥ तादृश्यामेवदिनचतुष्टयमेकादशवृत्तौ सर्वोपद्रवनाशः ॥२६॥ एकोनपंचाशद्दिनपर्यन्तं प्रतिश्लोकं श्रीबीजसम्पुटितस्य पंचदशावृत्तौ लक्ष्मीप्राप्तिः ॥२७॥ प्रतिश्लोकं वाग्बीजसम्पुटितस्य शतावृत्या विद्याप्राप्तिः ॥२८॥

॥ इति काम्यप्रयोगविधिः सम्पूर्णम् ॥

॥ अथ देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम् ॥

न मंत्रं यत्रंच यदपि च न जाने स्तुतिमहो, न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः। न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं, परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥१॥ विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया, विधेयाशक्यस्त्वात्तव चरणयोर्यच्च्युतिरभूत्। तदेतत्क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे, कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥२॥ पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः, परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः। मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे, कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥३॥ जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता, न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया। तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे, कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥४॥ परित्यक्ता देवा विविधविधिसेवाकुलतया, मया पंचाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि। इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता, निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥५॥ श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा, निरातंको रंको विहरति चिरं कोटिकनकैः। तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं, जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ ॥६॥ चिताभस्मालेपो गरल-

म शनं दिक्पटधरो, जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः । कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं, भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥७॥ न मोक्षस्याकांक्षा भवविभववांछापि च न मे, न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः । अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै, मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः ॥८॥ नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः किं रुक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः । श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥९॥ आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं, करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि । नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥१०॥ जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि । अपराधपरम्परापरं न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥११॥ मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि । एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु ॥१२॥

॥ इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

॥ अथ दुर्गाजी की आरती ॥

जय अम्बे गौरी मैया, जय मंगल मूर्ति, मैया जय आनन्द करणी ।
तुमको निशदिन ध्यावत हरि ब्रह्मा शिवजी ॥ जय अम्बे० ॥

मांग सिन्दूर विराजत टीको मृगमद को । उज्ज्वल से दोऊ नैना चन्द्र वदन नीको ॥ जय० कनक समान कलेवर रक्ताम्बर राजे । रक्त पुष्प गल माला कंठन पर साजे ॥ जय० केहरि वाहन राजत खड्ग खप्परधारी । सुरनर मुनि जन सेवत तिनके दुःखहारी ॥ जय० कानन कुण्डल शोभित नासा गजमोती । कोटिक चन्द्र दिवाकर राजत समज्योती ॥ जय० शुम्भ निशुम्भ विदारो महिषासुर घाती । धूम्र विलोचन नैनन निशदिन मदमाती ॥ जय० चौंसठ योगिन गावत नृत्य करत भैरों । बाजत ताल पखावज मृदंग अरु बाजत डमरू ॥ जय० भुजा चार अति शोभित खड्ग खप्परधारी । मनवांछित फल पावत सेवत नर नारी ॥ जय० कंचन थाल अगर कपूर की बाती । श्री मालकेतु में राजत कोटि रत्न ज्योती ॥ जय० या अम्बे की आरति जो कोई नर गावे । भनत शिवानन्द स्वामी सुख सम्पति पावे ॥ जय०

॥ आरती दुर्गाजी की ॥

मंगल की सेवा सुन मेरी देवा हाथ जोड़ तेरे द्वार खड़े ।
पान सुपारी ध्वजा नारियल ले ज्वाला तेरी भेंट करे ॥

सुन जगदम्बा कर न विलम्बा सन्तन को भण्डार भरे।
सन्तन प्रतिपाली सदा कुशाली जय काली कल्याण करे॥
बुद्धि विधाता तू जग माता मेरा कारज सिद्ध करो।
चरण कमल का लिया आसरा शरण तुम्हारी आन परो॥१॥ सन्त०
वरा वरानने सब जग मोह्या तरुण रूप अनुरूप धरे।
माता होकर पुत्र खिलावे भार्या होकर गोद भरे॥
सन्तन सुखदाई सदा सहाई सन्त खड़े उपकार करें॥२॥ सन्त०
ब्रह्मा विष्णु महेश सहस फल लिए भेंट तेरे द्वार खड़े।
अटल सिंहासन बैठी माता सिर सोने का छत्र फिरे॥३॥ सन्त०
गर शनिश्चर कुमकुम वरणी जब लौकड़ को हुक्म करे।
खड्ग त्रिशूल हाथ लिये रक्तबीज को भस्म करे॥
शुम्भ निशुम्भ पछाड़े माता महिषासुर को पकड़ दले॥४॥ सन्त०
आदि अवतार आदि राजत अपने जन को कष्ट हरे।
कोप होय कर दानव मारे चण्डमुण्ड सब चूर करे॥५॥ सन्त०

सौम्य स्वभाव धरे गौरी माता उनकी अरज कबूल करे।
सिंह पीठ पर चढ़ो भवानी अखिल भुवन में राज करे॥६॥
दर्शन देव पावें मंगल गावें सिद्ध साधु पर भेंट धरे।
ब्रह्मा वेद पढ़ें तेरे द्वारे शिव शंकर जी ध्यान धरे।॥७॥ सन्त०
इन्द्र कृष्ण तेरी करें आरती चंवर कुबेर डुलाय रहे।
जय जननी जय मात भवानी अटल भवन में राज्य करे॥८॥ सन्त०

॥ आरती दुर्गाजी नं० २ ॥

सुन मेरी देवी पर्वतवासिनी कोई तेरा पार न पाया॥ टेक॥
पान सुपारी ध्वजा नारियस ले तेरी भेंट चढ़ाया॥ सुन०॥१॥
साड़ी चोली तेरे अंग विराजे केसर तिलक लगाया॥ सुन०॥२॥
ब्रह्मा वेद पढ़ें तेरे द्वारे शंकर ध्यान लगाया॥ सुन०॥३॥
ऊंचे पर्वत आप विराजो ऊंचा महल बनाया॥ सुन०॥४॥
सतयुग द्वापर त्रेता कलयुग तेरा राज बसाया॥ सुन०॥५॥
धूप दीप नैवेद्य आरती मोहन थाल लगाया॥ सुन०॥६॥
धानु भक्त मैया तेरे गुणगाया मनवांछित फल पाया॥ सुन०॥७॥